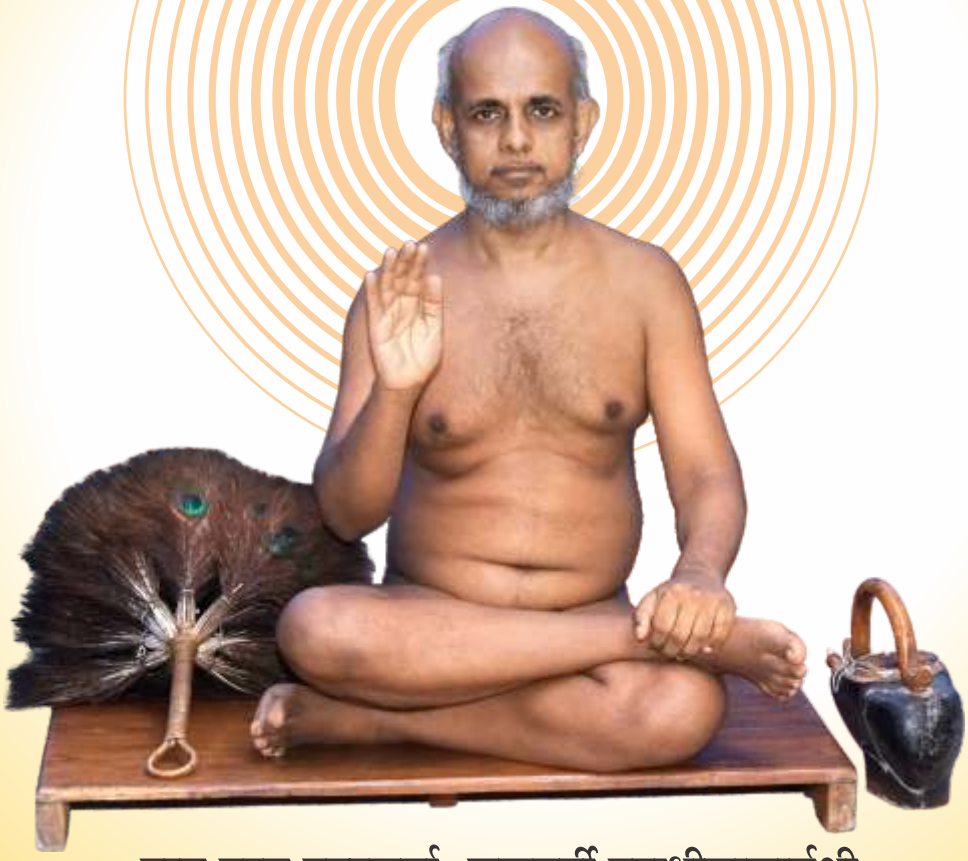

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री

सुविधिसागर जी महाराज

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर

सुविधि–परिवार के द्वारा आयोजित

जिनवाणी-महोत्सव

सहस्रग्रन्थसंग्रह

* जन्मदिवस 19–03–1971 * मुनिदीक्षा–11–05–1989 * आचार्यपद– 20–06–2004

पट्टाधीशपद– 24–12–2010 (20–06–2004 को की गई उद्घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्घोषणा:–

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी–जुलाई 2004) (अक्षयज्योति–अक्तूबर 2004)

कालन्त्ररूपमाला

(पञ्चसन्धि)

ग्रन्थकर्त्ता
परम पूज्य आचार्यश्री शर्मवर्म जी महाराज

टीकाकार
परम पूज्य आचार्यश्री भावसेन जी महाराज

अनुवाद–सम्पादन
ब्रह्मचारी प्रदीप शास्त्री–पीयूष

मुद्रक
श्री दिगम्बर साहित्य प्रकाशन समिति
जबलपुर (मध्यप्रदेश)

(परम्परानायक)

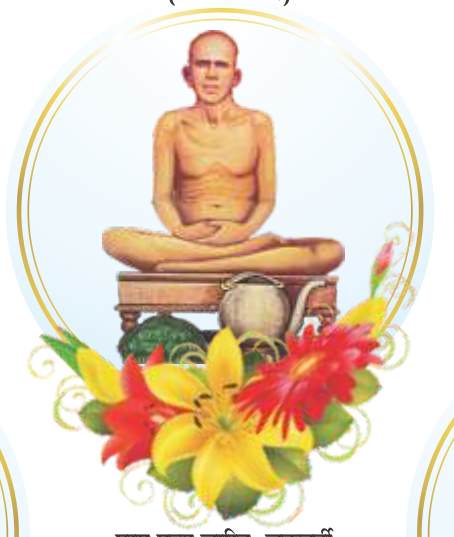

परम पूज्य चारित्र–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज
(अंकलीकर)

(द्वितीय पट्टाधीश)

परम पूज्य तीर्थभक्त–शिरोमणि,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

(तृतीय पट्टाधीश)

परम पूज्य सिद्धान्त–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीश)

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्रायः होता है। फलतः उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें।

मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्त्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तृत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि–परिवार

दिगम्बरार्य श्री १०८ पूज्यपादस्वामी–विरचित जैनेन्द्र–व्याकरणस्य
दिगम्बरार्य श्री १०८ अभयनन्दिकृत–

जैनैन्द्र–महावृत्ति

(पञ्च–सन्धि)

अनुवाद/सम्पादन

साहित्याचार्य बा. ब्र. डॉ. प्रदीप शास्त्री "पीयूष"

६१०, संजीवनी नगर गढा, जबलपुर (म. प्र.)

६४२४६–१४१४६, ६८२६१–४४६५४, ०६६३४८–६६०६१, ०६८२६६–४५५३५, ६५६०४६८५४७
०६५६०४६८५४७

प्रकाशक

श्री दिगम्बर साहित्य प्रकाशन समिति बरेला, जबलपुर (म. प्र.)

साहित्याचार्य डॉ. पं. पन्नालाल जैन संस्थान

६१०, संजीवनी नगर गढा, जबलपुर (म. प्र.)

संस्करण प्रथम– (२१.०७.२०१५) लागत व्यय–४५० (चार सौ पचास) रुपये

श्री शर्ववर्मकृतकलाप–व्याकरणस्य वादिपर्वतवज्रश्रीमद्भावसेनत्रैविद्यकृता टीका

कातन्त्र–रूपमाला – पञ्च– सन्धि

जैनेन्द्र–महावृत्ति तथा पाणिनिकृत् व्याकरण के ससूत्र

अनुवाद/सम्पादन
साहित्याचार्य बा. ब्र. डॉ. प्रदीप शास्त्री "पीयूष" (एम. ए.)

साहित्याचार्य डॉ. पं. पन्नालाल जैन संस्थान
६१०, संजीवनी नगर जबलपुर (म. प्र.)
६४२४६–१४१४६, ६८२६१–४४६५४, ०६६३४८–६६०६१ ०६८२६६–४५५३५

प्रकाशक – :
श्रीदिगम्बर साहित्य प्रकाशन समिति बरेला जबलपुर (म. प्र.)
साहित्याचार्य डॉ. पं. पन्नालाल जैन संस्थान
६१०, संजीवनी नगर जबलपुर (म. प्र.)
६४२४६१४१४६, ६८२६१४४६५४, ०६६३४८६६०६१ ०६८२६६४५५३५

संस्करण प्रथम– (२१.०७.२०१५)
लागत व्यय–४५० (चार सौ पचास) रुपये

समर्पण

जो तीर्थंकर महावीर की
परम्परा के
समुज्ज्वल नक्षत्र हैं,
जिनका अद्‌भुत जीवन
अध्यात्म की पवित्र प्रेरणा
प्रदान करता है,
जिनके विचार, भूले भटके
जीवन राहियों का
पथ–प्रदर्शन करते हैं,
उन्हीं श्रद्धालोक के देवता,
श्रमण संस्कृति के
कीर्ति स्तम्भ
परम पूज्य गुरुवर
राष्ट्रसन्त, विश्वविख्यात, सन्त शिरोमणी
आचार्य श्री १०८ विद्यासागर जी महाराज
के पचासवें
संयमपदारोहण वर्ष की
पावन बेला में
उनके पवित्र श्रीकरकमलों में
सादर
सविनय
समर्पित।

बाल ब्र. डॉ. प्रदीप शास्त्री पीयूष

२१.०७.२०१५

टीप – सम्प्रति अडतालीसवाँ संयममहोत्सव चल रहा है।

आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज की जीवन झाँकी

पूर्वनाम	:	ब्र. विद्याधर जी
जन्म	:	१० अक्टूबर १९४६ (शरद पूर्णिमा)
जन्म स्थान	:	सदलगा, जिला–बेलगाँव (कर्नाटक)
पिता का नाम	:	श्री मलप्पा जी
		(समाधिस्थ – मुनि श्री १०८ मल्लिसागर जी महाराज)
माता का नाम	:	श्रीमती श्रीमती जी
		(समाधिस्थ–आर्यिका १०५ समयमति माता जी)
ब्रह्मचर्य व्रत	:	१९६७ में आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज से
मुनि दीक्षा	:	३० जून १९६८ में आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज से
दीक्षास्थल	:	अजमेर (राज.)
आचार्यपद	:	२२ नवम्बर १९७२ (मगसिर कृष्ण दोज) नसीराबाद में
शिक्षा	:	हाई स्कूल (कन्नड़ माध्यम से)
कृतित्व	:	नर्मदा का नरम कंकड़, डूबो मत/लगाओ डुबकी, तोता क्यों रोता (काव्य–संग्रह), चेतना के गहराव में (सचित्र) प्रतिनिधि काव्य संकलन, मूकमाटी (महाकाव्य), छह संस्कृत शतकों के अतिरिक्त अनेक ग्रन्थों का पद्यानुवाद तथा हिन्दी, अंग्रजी, कन्नड़, बंगला आदि में स्फुट रचनाएँ भी।
संयमी सृजन	:	बाल ब्रह्मचारी– १०२ मुनि, बाल ब्रह्मचारिणी– १९५ आर्यिकायें, बाल ब्रह्मचारी– ८ ऐलक जी, बाल ब्रह्मचारी –५ क्षुल्लक जी, समाधि प्राप्त लगभग– ३५ (मुनि, आर्यिका, क्षुल्लक, क्षुल्लिका)

परिचय के गवाक्ष से

नाम	:	बाल ब्र. डॉ. प्रदीप शास्त्री पीयूष
जन्म	:	०४ अगस्त १९६७
जन्म स्थान	:	ग्वालियर (म.प्र.)
शिक्षा	:	साहित्य से आचार्य एवं एम. ए. (संस्कृत से)
पिता का नाम	:	स्व. सेठ श्री टीकाराम जी जैन, नायक (जैसवाल)
माता का नाम	:	श्रीमती बादामी देवी जैन
भाई तीन बड़े	:	महेश चन्द्र–सुरेश चन्द्र–भगवानदास जैन
बहिन तीन बड़ी	:	श्रीमती हेमलता–सुमन–प्रभा जैन
ब्रह्मचर्य व्रत	:	०१ जून १९८७ ललितपुर (उ.प्र.)
सप्तमप्रतिमा	:	३० अप्रैल २०१२ चन्द्रगिरि (डोगरगढ़, छ.ग.)
उपाधि	:	पी. एच. डी.
		(अष्टाध्यायी एवं जैनेन्द्र व्याकरण का तुलनात्मक अध्ययन)
हिन्दी अनुवाद	:	कातन्त्र–रूपमाला, जैनेन्द्र महावृत्ति (संस्कृत व्याकरण)
संकलन/सम्पादन	:	जिनभारती संग्रह, (जिनवाणी संग्रह), नित्यपूजा, जिनपूजा, जिन–अर्चना, धर्मध्यान, तत्त्वार्थसूत्र, द्रव्यसंग्रह प्रश्नोत्तर प्रदीप, छहढाला प्रश्नोत्तर प्रदीप, रत्नकरण्डक श्रावकाचार, समयसार (गुटका), इष्टोपदेश (गुटका), तिलोय–पण्णत्ती प्रश्नोत्तर प्रदीप, सर्वोपयोगी प्रश्नोत्तर प्रदीप भाग १–२–३–४ इत्यादि लगभग १५०पुस्तके प्रकाशित हो चुकी हैं।

कहाँ/क्या?

१. मंगल आशीर्वचन	÷	आचार्य श्री १०८ वर्धमानसागर जी	–	७
१. मंगल आशीर्वचन	÷	आचार्य श्री १०८ विनम्रसागर जी	–	७
२. आशीर्वचन	÷	मुनि श्री १०८ निर्णयसागर जी	–	८
३. आमुख	÷	मुनि श्री १०८ निर्दोषसागर जी	–	६
४. अपनी बात	÷	मुनि श्री १०८ निर्लोभसागर जी	–	११
५. शुभाशंसा	÷	साहित्याचार्य डॉ. पन्नालाल जी	–	१२
६. भूमिका	÷	ब्र. प्रदीप शास्त्री पीयूष	–	१३
७. भाषा का महत्त्व	÷	पं. के. पी. जैन, एम. सी, जैन	–	२१
७. सन्धि विवेचन	÷		–	२२
७. भाषा का महत्त्व	÷	पं. के. पी. जैन, एम. सी, जैन	–	२१
८. कातन्त्र–रूपमाला : एकपरिचय	÷	नीरज जैन	–	३४
६. ग्रन्थ–प्रारम्भ–पञ्चसन्धि	÷		–	३३
१०. सञ्ज्ञाचक्रम्			–	३७
१०. अथ सञ्ज्ञासन्धिः			–	३६
११. स्वर सन्धि सम्बन्धी चक्र			–	५७
१२. अथ स्वरसन्धिरुच्यते			–	५८
१३. अथ दीर्घसन्धिः			–	५६
१४. अथ गुणसन्धिः			–	६३
१५. अथ वृद्धिसन्धिः			–	३७३
१६. अथ यण्सन्धिः			–	८२
१७. अयादिसन्धि			–	८७
१८. अथ प्रकृतिभावसन्धिः			–	१००
१६. व्यञ्जन सन्धि सम्बन्धी जानकारी			–	१०६
२०. अथ व्यञ्जनसन्धिरुच्यते			–	११२
२१. विसर्जनीय सन्धि सम्बन्धी जानकारी			–	१३७
२२. अथ विसर्जनीयसन्धिरुच्यते			–	१३६
२३. अथ स्यादिसन्धिः			–	१४५
२४. कातन्त्र–रूपमाला (पञ्च–सन्धि) के सूत्र पाठ			–	१६१
२५. जैनेन्द्र–महावृत्ति(पञ्च–सन्धि)			–	१७१
२६. अथ संज्ञाप्रकरणम्			–	६६२
२७. अथ प्रकृतिभावसन्धिः			–	१७६
२८. अथ हलसन्धिः			–	१८१
२६. ।।अथ विसर्गसन्धिः।।			–	१८६
३०. ।अथ स्वादिसन्धि।।			–	१८७

"मंगल आशीर्वचन"

श्रीशर्मवर्मकृत **"कलाप–व्याकरण"** की श्रीमद्भावसेन त्रैविद्य कृत टीका युक्त **"कातन्त्र–रूपमाला"** का संस्कृत व्याकरण जगत् में महत्त्वपूर्ण स्थान है। सुबोधगम्य सूत्र और प्रकरण बद्ध यह रचना **"बालबोधाय कथ्यते"** की उक्ति को सार्थक करती है। मंगलाचरण में वीरप्रभु, सरस्वतीदेवी और वृषभसेन से गौतमप्रभु पर्यन्त तीर्थंकरदेवों के समस्त गणधरों का मंगलाचरण में स्मरण करके भक्तिपूर्वक मूलोत्तर गुणों के धारक समस्त ढ़ाई द्वीपों के मुनियों को नमस्कार किया गया है। सरलसुबोध इस व्याकरण का पठन–पाठन प्रायः दिगम्बर सम्प्रदाय के मुनिसंघों में संस्कृत व्याकरण का अध्ययन करने हेतु किया जाता है।

हमने जब **"कातन्त्र–रूपमाला"** का अध्ययन किया तब **"कातन्त्र–रूपमाला"** अपने मूलरूप में ही थी, उसकी हिन्दी व्याख्या नहीं थी। सम्प्रति हिन्दी रूप में संक्षिप्त अनुवाद के पश्चाद् **ब्र. भैया प्रदीप शास्त्री पीयूष जी** ने सम्पूर्ण **"कातन्त्र–रूपमाला"** की हिन्दी व्याख्या विस्तार के साथ की है। सम्प्रति अध्ययन करने वालों के लिए अध्ययन करने में सुगमता हो गई है। संस्कृत–व्याकरण का अध्ययन करने के लिए संस्कृत का ज्ञान होने पर ही समझा जा सकता था, किन्तु अब शोधकप्रज्ञा प्राप्त व्याकरण के गहन अध्येता **ब्र. पीयूष जी** ने अपनी विस्तृत व्याख्या से इस ग्रन्थ का अध्ययन सुगम बना दिया है। **ब्र. पीयूष जी** ने, जैन जगत के सिरमोर, आर्षपरम्परा के संरक्षक, मनीषी विद्वान्, **साहित्याचार्य डॉ. पं. पन्नालाल जी** सागर से अध्ययन का सुयोग पाकर अपनी प्रज्ञा को परिमार्जित कर, इस दुरुह कार्य को किया है। **"कातन्त्र–रूपमाला"** की सम्पूर्ण विस्तृत टीका अध्येताओं को पूर्व में उपलब्ध हो चुकी है। अब पूर्वार्द्ध के अन्तर्गत संशोधित एवं संवर्द्धित **"पञ्च–सन्धि"** को जैनेन्द्र–महावृत्ति एवं पाणिनि व्याकरण के ससूत्र के प्रकाशन से व्याकरण ग्रन्थ की समग्र विस्तृत पूर्ण व्याख्या उपलब्ध हो सकेगी। शनैः शनैः लिंग, समास इत्यादि प्रकरण भी **ब्र. पीयूष जी** द्वारा प्रकाशित हो तथा **ब्र. पीयूष जी** ने, अपने जीवन में व्रतों के साथ ज्ञान प्राप्त किया, वे जिनवाणी की सेवा और आत्मसाधना में लगे रहें, उन्हें हमारा मंगल आशीर्वाद.....।

२४.०२.२०१४ **आचार्य वर्धमानसागर**

ग्वालियर (म.प्र.) **(चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री १०८ शान्तिसागर जी महाराज (दक्षिण) के वर्तमान पट्टाचार्य)**

"आशीर्वचन"

संस्कृत भाषा सभी भाषाओं की जननी कही जाती है यदि संस्कृत भाषा होती तो शायद ही अन्य हिन्दी, अग्रेजी आदि भाषाओं को शुद्ध बोला जा पाता। हमने अपने छात्र जीवन में संस्कृत भाषा को कोई महत्व नहीं दिया था। अंग्रेजी को बहुत चाहा था। लेकिन जब परमपूज्य गुरुदेव श्री विरागसागर जी महाराज ने हमें जबरदस्ती कान्तत्र–रूपमाला के सूत्रों को पढ़ाया तो ये सूत्र पढ़कर हमें संस्कृत भाषा का ज्ञान हुआ जिसके माध्यम से हमने सभी भाषाओं को शुद्ध बोलना जान लिया। यह कातन्त्र–रूपमाला दिखने में तो एक छोटा सा ही ग्रन्थ है लेकिन इसका अध्ययन हमें शब्दों का विशष ज्ञान कराता है।

एक समय था जब संस्कृत भाषा को पढ़ाने के लिये जैन विद्वानों का अभाव था। क्षुल्लक श्री सहजानन्द जी वर्णी, गणेश प्रसाद जी वर्णी आदि जैसे संतों को कोई संस्कृत पढ़ाने बाला नहीं था। उन्होंने संस्कृत भाषा को पढ़ने के लिये कितने कष्ठ उठाये, यह सर्वविदित है। अनादर और अपमान सहन कर उन्होंने संस्कृत भाषा को पढ़ा।

संस्कृत विभाग की परीक्षा में लघुसिद्धान्त–मध्यसिद्धान्त–सिद्धान्त कौमुदी पाढ्यक्रम में होने से उन्हीं का पठन–पाठन प्रचलित रहा। सम्प्रति ब्र. प्रदीप शास्त्री पीयूष जी द्वारा कातन्त्र–रूपमाला का अध्ययन कर, सरल, स्पष्ट–सूक्ष्म विवेचन के साथ विस्तृत टीका कर इसे प्रकाशन कराकर आज सन्तों व श्रावकों के लिए संस्कृत भाषा का अध्ययन सुगम बनाया। इस कातन्त्र–रूपमाला को पढ़कर संस्कृत भाषा को पढ़ना बहुत सुगम व सरल हो जाता है, इसके अध्ययन के विना प्राचीन आचार्यों के कथन को सही ढंग से समझना सम्भव नहीं है।

ब्र. भैया प्रदीप शास्त्री पीयूष जी की संस्कृत भाषा पर अच्छी पकड़ है, उनका यह अध्ययन जैन दर्शन के साहित्य–जगत में बहुत ही महत्वशाली है। आगम के प्रति उनकी श्रद्धा, सन्तों के प्रति सम्मान, विद्वानों के प्रति आदर से ने उनके व्यक्तित्व को बहुत ही श्रेष्ठ बनाया है। उनका सुलझा हुआ व्यक्तित्व, विवादों से रहित व्यवहार हमें बहुत पसंद आता है। इस **"कातन्त्र–रूपमाला"** की उनके द्वारा की गई हिन्दी टीका से सभी लोगों में संस्कृत भाषा को पढ़ने में अवश्य ही सुगमता होगी।

युगों युगों तक **ब्र. पीयूष जी** की यह मेहनत असीम पुण्यबन्ध कराएगी और यह कृति अविस्मरणीय रहेगी। **ब्र. पीयूष जी** इसी तरह जिनवाणी की सेवा में निरन्तर लगे रहें, स्वयं ज्ञानोपयोगी बनकर सभी को ज्ञान प्राप्त कराएँ और भविष्य में उत्कृष्ट साधना करते हुए दिगम्बरत्व पाकर समाधि को प्राप्त करें।

हमारा उनके इस श्रेष्ठ कार्य के लिए मंगलमय आशीर्वाद है।

०५.११.२०१४, मधुवन शिखर जी **उच्चारणाचार्य श्रमण विनम्रसागर**

आशीर्वचन

आचार्य श्री शर्मवर्म कृत **"कलाप–व्याकरण"** के सूत्रों की संस्कृत वृत्ति वादिपर्वत श्रीमद् भावसेन त्रैविद्य के द्वारा लिखि गई है। **"कातन्त्र–रूपमाला"** का पठन–पाठन प्रायः कर दिगम्बर आम्नाय के संघों में हुआ करता है। इसके अध्ययन से दिगम्बर जैनसिद्धान्त ग्रन्थों का अध्ययन सहजता से हो जाता है। पूज्य गुरुवर आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज जब भी संघ को व्याकरण पढ़ाते थे, तब वे मूलसूत्र की संस्कृतवृति से ही पढ़ाते थे। उस समय हिन्दी टीका उपलब्ध नहीं होने से पढ़ने वाले पाठकगणों को पढ़ने में कठिनाई होती थी। परन्तु **"बाल ब्रह्मचारी प्रदीप शास्त्री पीयूष"** के द्वारा इसकी विस्तृत हिन्दी टीका करने पर, पढ़ने वालों को व्याकरण पढ़ने में सुलभता हो गई है। **"कातन्त्र–रूपमाला"** का पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध का प्रथम भाग द्वितीयभाग और तृतीयभाग पूर्व में प्रकाशित होने पर आचार्य श्री द्वारा पाठयित व्याकरण का अवलोकन उपर्युक्त अनुवाद द्वारा सहज और सरल हो गया।

प्रस्तुत ग्रन्थ मात्र पंचसंधि रूप में ही प्रकाशित हो रहा है। पंचसंन्धि के अनुवाद को संशोधित एवं संवर्धित कर नये प्रारूप में प्रकाशित किया जा रहा है। कातन्त्र–रूपमाला के साथ तुलनात्मक जैनेन्द्र–व्याकरण तथा पाणिनिकृत सूत्र होने से **ब्र. पीयूष जी** की बौधिकता प्रदर्शित होती है।

कातन्त्र–रूपमाला की पंचसंधि की हिन्दी टीका करने में ब्रह्मचारी जी ने जो श्रम किया है, वह अन्य विद्वानों को भी प्रेरणादायी है। अब सम्भवतया **पीयूष जी** की लेखनी लिंग–समास आदि तथा जैनेन्द्र महावृत्ति के लिखने में चलेगी।

कातन्त्र–व्याकरण के इस पंच–सन्धि प्रकरण के प्रकाशन के लिये ब्रह्मचारी जी को मेरा शुभाशीष है। वे इसी प्रकार जिनवाणी की सेवा और स्वयम् की आत्म साधना में लगे रहें, और शीघ्र ही लिंग–समास आदि तथा जैनेन्द्र–महावृत्ति को भी प्रकाशित कर, समाज के मध्य लायें, ताकि पठन–पाठन में सम्पूर्ण व्याकरण उपलब्ध हो सके। इसके प्रकाशन में जिनका भी प्रत्यक्ष–परोक्ष सहयोग जिस रूप में भी रहा है, उन सबको मेरा आशीर्वाद है। प्रस्तुत ग्रन्थ पठन–पाठन में आये एवं शोधार्थी छात्र जैन–व्याकरण पर शोध कर सकें, इसी भावना के साथ इत्यलम्।

०२.०२.२०१५ **मुनि निर्णयसागर**

(शिष्य–आचार्य श्री १०८ विद्यासागर जी महाराज)

आमुख

संस्कृत भाषा एक अत्यन्त प्राचीन भाषा है, समस्त भाषाओं में संस्कृतभाषा का मुख्य और उच्च स्थान है। वर्तमान में विद्यार्थी इस भाषा से पराङ्मुख तथा इंग्लिश भाषा में द्रुतगति से प्रभावित होते जा रहें हैं। लेकिन वास्तव में गम्भीरता से विचार किया जाये तो सम्पूर्ण जैनसिद्धान्त संस्कृत और प्राकृतभाषा में ही उपलब्ध है। यदि कोई जैनसिद्धान्त के गूढ़ रहस्यों को जानना चाहता है और साक्षात् उन पूर्वाचार्यों से वार्तालाप करना चाहता है तो उसको संस्कृत व्याकरण पढ़ना ही पढ़ेगी। इसके विना यदि कोई जैनसिद्धान्त के रहस्य को समझने का प्रयास करता है, तो उसका यह प्रयास ऐसा है, जैसे कोई बालक जल में पड़ते हुए चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब को पकड़ना चाहता है। अथवा यूँ कहें कि विना संस्कृत के जैनसिद्धान्त में प्रवेश करने का प्रयास वौना है।

वर्तमान में पाणिनीयकृत् व्याकरण का प्रचलन है। जैन व्याकरण और पाणिनि व्याकरण का अध्ययन व्याकरण के तलस्पर्शी विद्वान् **"साहित्याचार्य बाल ब्रह्मचारी भाई श्री प्रदीप शास्त्री पीयूष जी"** ने किया है। **"कातन्त्र–रूपमाला"** का हिन्दी अनुवाद उपलब्ध नहीं होने से वह पठन–पाठन में प्रचलित नहीं हो पाई। **ब्र. पीयूष जी** द्वारा **"कातन्त्र–रूपमाला"** की विस्तृत सरल टीका कर, इसको पठन–पाठन के योग्य बना दिया है।

प्रस्तुत पंचसन्धि के पूर्व कातन्त्र–व्याकरण का हिन्दी अनुवादित पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध प्रकाशित हो कर के पाठकों के हाथ में आया। जिसके विषय को पढ़कर के जिज्ञासुओं ने हृदय से सराहना की, इसके उपलब्ध होने पर ही अनेक त्यागी–व्रतियों ने संस्कृत व्याकरण का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया।

पाठकगणों की रुचि को देखकर के आदरणीय **भाई सा. प्रदीप जी** ने **"कातन्त्र–रूपमाला"** के इस पंचसन्धि प्रकरण को संशोधित एवं संवर्धित कर, जैनेन्द्र–व्याकरण एवं पाणिनी व्याकरण के तुलनात्मक सूत्रों के साथ प्रकाशित करने का मन बना लिया, ताकि अध्येता, व्याकरण में पारङ्गत हो सके।

कठिन परिश्रम करके **भाई सा. श्री पीयूष जी** ने **"कातन्त्र–रूपमाला"** नामक ग्रन्थ को पाठकों तक भेजने का प्रयास किया है, जो अपने आप में समादरणीय है।

संस्कृत भाषा और उसका साहित्य हमारे पूर्वाचार्यों की अमूल्य देन है। जिसकी परम्परा आज तक अविच्छन्न रूप से हमें प्राप्त है। मैं समझता हूँ कि आज जितने भी जैन विद्वान् व्याकरण के ज्ञाता नजर आते हैं वे सब **"पूज्य श्री गणेश प्रसाद वर्णी जी महाराज"** की देन हैं। उन्हीं वर्णी जी महाराज की कृपादृष्टि से पण्डित प्रवर **डॉ. श्री पन्नालाल जी साहित्याचार्य**, सागर, व्याकरण के मूर्धन्य विद्वान् हुए। उन्हीं की छत्रछाया में रह कर आदरणीय **भाई सा. ब्र. प्रदीप शास्त्री पीयूष जी** ने व्याकरण में पारङ्गता प्राप्त की। उनके अध्ययन की रुचि को देखकर मेरे द्वारा और अनुज भ्राता ब्र. कमल जी द्वारा भी व्याकरण का अध्ययन किया गया।

जिसके फलस्वरूप **"सुबोध संस्कृत भारती"** का सृजन हम दोनों के द्वारा किया गया जिसका सम्पादन आदरणीय भाई सा. पीयूष जी द्वारा किया गया।

संस्कृत का विशाल साहित्य अमूल्य ग्रन्थ रत्नों का सागर है। इतना समृद्ध साहित्य किसी भी दूसरी प्राचीन भाषा का नहीं है और न ही किसी अन्य भाषा की परम्परा इसके समान अविच्छिन्न प्रवाह के रूप में इतने दीर्घ काल तक रह पाई है।

संस्कृत का शब्द भण्डार अथाह है। इसका विस्तृत धातु पाठ नित्य नये शब्दों को बनाने में समर्थ रहता है।

आचार्य श्रीशर्ववर्मन् जी द्वारा रचित यह **"कातन्त्र–रूपमाला"** समस्त व्याकरणों में श्रेष्ठ और सर्वाङ्ग है। परिमार्जित एवं अतीव सरल शैली में लिखी गई है। इसकी विशेषता यह है कि कितने ही स्थलों पर एक ही सूत्र से शब्द की सिद्धि हो जाती है तथा इसमें बहुत छोटे–छोटे सूत्र हैं। साथ ही सूत्रों में उत्तर भी रहता है। जैसे– **"ए अय्", "ऐ आय्", "ओ अव्", "औ आव्"** इत्यादि। इन सूत्रों से ही स्पष्ट होता है कि ए के स्थान पर अय् आदेश, ऐ के स्थान पर आय् आदेश, ओ के स्थान पर अव् आदेश तथा औ के स्थान पर आव् आदेश होता है। इत्यादि अनेक सूत्रों से अर्थ स्पष्ट होता है।

इस प्रकार सम्पूर्ण **"कातन्त्र–रूपमाला"** में प्रत्याहार प्रक्रिया नहीं होने से विद्यार्थी को थोड़ा सा संकेत मिलने पर वह सुगमता से विषय को समझ लेता है।

लोग कहते हैं कि संस्कृत व्याकरण को पढ़ना लोहे के चने चबाने की तरह है। सर्वप्रथम तो लोहे के चने चबते ही नहीं और चब भी जायें तो पचते नहीं। इस प्रकार की प्रायः प्राणियों की धारणा है। लेकिन "कातन्त्र रूपमाला" लोहे के चने नहीं, बल्कि दूध मलाई के सदृश है। इसको सभी जन सहज–सरल रूप से तैयार कर सकते हैं, यदि पढ़ने की रुचि हो तो।

अन्त में, मैं यही कहूँगा कि **भाई साहब श्री प्रदीप जी** ने कठिन परिश्रम करके इस कृति को पठनीय बना दिया है। इसके लिये में उनके लिये कोटिशः धन्यवाद देता हूँ तथा भावना भाता हूँ कि आपकी लेखनी इसी प्रकार अविरल–अविराम चलती रहे।

उदासीन आश्रम, इसरीबाजार **बाल ब्र. पवन जैन**

(सम्प्रति–मुनि श्री निर्दोषसागर जी महाराज)

नोट– आपकी दीक्षा–१०.०८.२०१३ को आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज द्वारा अतिशय क्षेत्र रामटेक में हुई, "आमुख" दीक्षा के पूर्व लिखा गया है।

अपनी बात

वैसे तो सभी साहित्य पठनीय होता है। सभी के अपने विशिष्ट गुण हैं। सभी ने अपने उपकार से मानव समाज को ही नहीं, किन्तु अन्य प्राणियों को भी स्वस्थ सुखी तथा अज्ञान–अन्धकार से हीनाधिक ऊपर उठाया है, किन्तु जब संस्कृत की ओर ध्यान जाता है तो बरबस ही मन–मयूर प्रफुल्लित हो नृत्य करने लगता है। ऐसी भावना जागरित हो उठती है कि मानों आनन्द–सरिता में किल्लोल कर रहा हो। यह निश्चय हो जाता है कि उत्कृष्ट मनुष्य जीवन का सर्वस्व प्राप्तव्य अब यहीं मिलेगा। क्योंकि सम्पूर्ण जैन साहित्य, न्याय, सिद्धान्त सभी संस्कृत और प्राकृत भाषा में ही लिखे गये हैं।

वर्तमान में ब्रह्मचारी भाईओं में अध्ययन के प्रति अरुचि देखकर खेद होता है, कि अब कैसे अपूर्व जैन साहित्य का प्रचार–प्रसार होगा। सम्प्रति विद्वज्जन भी विधि–विधान में संलग्न हैं, परन्तु वे विस्मृत हैं कि विना संस्कृत के वे मन्त्रों का उच्चारण नहीं कर पा रहे हैं, फिर भी वे संस्कृत नहीं पढ़ना चाहते हैं। आज बहुताय विधानाचार्यों को मंगलाष्टक का उच्चारण तक नहीं बनता है। मैं अनुरोध करता हूँ उन विधानाचार्यों से कि वे सर्वप्रथम संस्कृत व्याकरण का अध्ययन कर अपने आप को परिपक्व बनाये। मैं धन्यवाद देता हूँ **"साहित्याचार्य बाल ब्रह्मचारी भाई श्री प्रदीप शास्त्री पीयूष जी"** को जिन्होंने पण्डित प्रवर **डॉ. श्री पन्नालाल जी साहित्याचार्य** सागर से, जैनसिद्धान्त, न्याय और व्याकरण का ठोस अध्ययन कर जिनागम के प्रकाशन में संलग्न हैं।

पाठकगणों की रुचि को देखकर आदरणीय **भाई सा. प्रदीप जी** ने **आचार्य श्री शर्ववर्मन् जी** द्वारा रचित **"कातन्त्र–रूपमाला"** का सरलतम हिन्दी अनुवाद कर व्याकरण को सर्वोपयोगी बना दिया है। **"कातन्त्र–रूपमाला"** का पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध पूर्व में प्रकाशित हो चुका है, जो अनेक साधकगणों को अध्ययन में सहयोगी रहा। सम्प्रति **"कातन्त्र–रूपमाला"** का पंच सन्धि का प्रकरण प्रकाशित हो रहा है, जो संस्कृत अध्येताओं को अध्ययन करने में सहयोगी रहेगा।

आदरणीय **भाई सा. श्री पीयूष जी** ने दुरुह **"कातन्त्र–रूपमाला"** नामक व्याकरण के स्थलों को सरलतम हिन्दी की तरह बना दिया है। कोई भी पाठक इसे पढ़कर संस्कृत के शब्द–विश्व के ऊपर सदैव अप्रकम्पनीय वह आधिपत्य स्थापित कर सकता है, जिसे कभी भी कोई डिगा नहीं सकता है।

प्रस्तुत **"कातन्त्र–रूपमाला"** का पंचसंधि प्रकरण का हिन्दी अनुवाद रूप व्याख्यान किया गया है, जो पाठकगणों को अध्ययन में सहयोगी रहेगाा। आज हमें **"पूज्य श्री गणेश प्रसाद वर्णी जी महाराज"** का उपकार स्मरण करना चाहिये जिन्होंने पण्डित प्रवर **डॉ. श्री पन्नालाल जी साहित्याचार्य**, सागर जैसे मूर्धन्य विद्वान् तैयार किये। उनकी छत्रछाया में रह कर अनेक विद्वान् व्याकरण में पारङ्गता को प्राप्त हुये हैं। इत्यलम्.....।

उदासीन आश्रम, इसरीबाजार **बाल ब्र. कमल जैन**

(सम्प्रति–मुनि श्री निर्लोभसागर जी महाराज)

नोट– आपकी दीक्षा–१०.०८.२०१३ को आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज द्वारा अतिशय क्षेत्र रामटेक में हुई, "अपनी बात" दीक्षा के पूर्व लिखा गया है।

शुभाशंसा

श्रीआचार्यभावसेनत्रिविद्य मुनिराज ने **"कलाप–व्याकरण"** पर **"कातन्त्र–रूपमाला"** की रचना की है। इसके कर्त्ता शब्दागम, तर्कागम, न्यायशास्त्र और परमागम–सिद्धान्त इन तीन विद्याओं के प्रकाण्ड विद्वान् थे। अतः उन्हें त्रैविद्य की उपाधि से अलंकृत किया गया है। **"कातन्त्र रूपमाला"** सरल व सुबोध व्याकरण है।

कातन्त्र का अर्थ लघुता से है। अर्थात् **"कु अर्थात् ईषत् व्याकरणम् कातन्त्रम्"। "का त्वीषदर्थे क्षे"** (४६५) सूत्र द्वारा **"कु"** के स्थान पर **"का"** आदेश हुआ है। यहाँ पर कु का अर्थ संक्षिप्त होता है यानि **"ईषद् जलं काजलं"** थोड़ा पानी। स्पष्ट है कि किसी बड़े ग्रन्थ का संक्षेप होने के कारण इसका नाम कातन्त्र पड़ा।

रचनाकार ने इसे पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध रूप दो भागों में विभाजित किया है। पूर्वार्द्ध भाग में सन्धि, लिंग, अव्यय, कारक, समास एवं तद्धित आदि के प्रकरण हैं। उत्तरार्द्ध भाग में तिङन्त एवं कृदन्त के प्रकरण लिये गये हैं।

मेधावी छात्र **"बाल ब्रह्मचारी प्रदीप शास्त्री पीयूष"** जी ने अथक परिश्रम करके **"कातन्त्र–रूपमाला"** के दोनों भागों की सरल भाषा में हिन्दी टीका की है। इन्होंने आद्य कथन में जैनेन्द्र व्याकरण, पाणिनीय व्याकरण तथा कातन्त्र–रूपमाला की तुलनात्मक समीक्षा की है।

मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है कि **"बाल ब्रह्मचारी प्रदीप शास्त्री पीयूष"** जी ने अपनी मेधा बुद्धि को ग्रन्थ रचना, टीकाकरण, सम्पादन तथा प्रकाशन के योग्य विकसित किया है।

व्याख्या की शैली सुबोध और सरल है। सरल करने का भी एक कारण है कि व्याकरण में यदि प्रवेश चाहते हैं तो पंचसन्धि को धातुओं को समझना अत्यन्त आवश्यक है। आपके द्वारा **"जैनेन्द्र महावृत्ति"** का हिन्दी अनुवाद किया है तथा आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी रचित जैनेन्द्र महावृत्ति महाव्याकरण का आधार लेकर **"जैनेन्द्र सिद्धान्तवृत्ति"** का सृजन किया जा रहा है।

आपका अधिक से अधिक समय लेखन, पठन और पाठन में ही व्यतीत होता है। इन्होंने अभी तक लगभग १५० जैन ग्रन्थों का सम्पादन कर उन्हें सरल व सुबोध भाषा में प्रकाशित किया है। जो जन सामान्य के लिए सरल व ग्राह्य हैं। उनके अनेक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। एतदर्थ वे धन्यवाद के पात्र हैं। मैं आशा करता हूँ कि इनके द्वारा जिनागम के अन्य ग्रन्थ भी सम्पादित, अनुवादित व प्रकाशित होते रहेंगे। इनके कार्यों के प्रति मेरी शुभाशंसा है। मुझे ऐसा विश्वास है कि संस्कृत व्याकरण सीखने वाले जिज्ञासुओं के लिये उनकी यह कृति अत्यन्त उपयोगी रहेगी।

पूर्वार्द्ध से साभार

साहित्याचार्य डॉ. पन्नालाल जैन, सागर
(सम्प्रति पं. साहब की स्मृति शेष है)

अथ संज्ञाप्रकरणम्

अइउण् (१) ऋऌक् (२) एओङ् (३) ऐऔच् (४) हयवरट् (५) लण् (६) ञमङणनम् (७) झभञ् (८) घढधष् (९) जबगडदश् (१०) खफछठथचटतव् (११) कपय् (१२) शषसर् (१३) हल्(१४) । इति प्रत्याहार सूत्राणि। एषामन्त्या इतः। हकारादिष्वकार उच्चारणार्थः। लण् सूत्रे कार इत्संज्ञकः।

अर्थ - ये चौदह सूत्र प्रत्याहारसूत्र हैं। इन का प्रयोजन अण् आदि संज्ञा करना है। अर्थात् अण् आदि प्रत्याहारों को बनाने में इनका प्रयोग होता है। इन १४ सूत्रों के अन्त्य वर्ण (ण् क् ङ् आदि) इत्सज्ञक हैं। अर्थात् उनका लोप हो जाता है। ह य व र ट् से लेकर ह ल् तक के वर्णों में अकार उच्चारण के लिये है।

परंतु लण् सूत्र में रहने वाला अकार इत्स ज्ञक है।

यया लंणो लकार स्थाडकारेण ..... (सूत्र नं. २४ आदेप् की व्यवस्था पर देखें।)

विशेष प्रत्येक सूत्र के अन्त्य में रहने वाले वर्ण् ण्, क्, ङ्, च्, ट्, ण्, म्, ञ्, ष्, श्, व्, य्, र्, ल्, ये

चौदह वर्ण अन्त्य हैं। इत्संज्ञा से तात्पर्य है "नाशः खम्" (२) १/१/६/।।

सूत्र से इत्सश्ज्ञ का लोप करना है। इन चौदह सूत्र के माध्यम से ४४ प्रत्याहार बनते हैं। जिनका वर्णन आगे **"अन्त्येनेतादि"** (३) १/६/७३

सूत्र की व्याख्या पर करेंगे। व्याकरण को सीखने के लिए प्रत्याहार सूत्रों को समझना अत्यधिक आवश्यक है। बिना प्रत्याहार के समझे व्याकरण में प्रवेश असंभव है। अतः मनोयोग से सबसे पहले चौदह सूत्रों को कण्ठस्थ कर आगे व्याकरण सूत्रों को कण्ठस्थ करना चाहिए।

"ध्यान देने की बात है कि इन सूत्रों और णक्ार दो बार आया है। इसका कारण है कि उसका उपयोग अट् और श्ल् इन दो प्रत्याहारों में होता है। इन दोनों प्रत्याहारों का प्रयोग क्रमशः **"अर्हेण" अट्कुप्वाङ् व्यवाये पि"** (१२८) सूत्र से अट् प्रत्याहार लिया जाता है और **"अधुक्षत्" "इगुङः शला निटो द शः क्सः"** ( )

सूत्र से शल् प्रत्याहार लिया जाता है। जैसा कहा भी है–

"हकारोद्विरूपात्तो यमटि शल्यपि वा छता।

अर्हेणाधुक्षदित्येतद् द्वयं सिद्धं भविष्यति" ।।

अर्थ- "अइउण"– आदि प्रत्याहार सूत्रों में हकार इसलिए दो बार पड़ा है कि अट् प्रत्याहार और शले प्रत्याहार दोनों में आ सके। क्रमशः दोनों में आने का फल है **"अर्हेण"** में तत्व और **"अधुक्षत्"** में क्स की सिद्धि। णकार का प्रयोग आगे **"अणुदित्य स्वस्यात्मना भाव्यो तपरः"** (६) सूत्र की व्याख्या दर्शायेंगे।

(१) संज्ञासूत्रम् – कार्यार्थो प्रयोगीत।।१.२.३।।

शास्त्रे न्यस्य कार्यार्थमाश्रीयते प्रयोगे च न श्रूयते यः स इत्सज्ञो भवति। अन्वर्था चेयमित्स ज्ञा। एति गच्छति नश्यतीतीत् इत्यनेनैव तस्य नाशसम्भवात् शास्त्रान्तरेण खं विधानं व्यर्थम्। इति णादीनामित्संज्ञा।।

अर्थ- शास्त्र में अन्य का कार्य, अर्थ को आश्रय करके और जो प्रयोग नहिं सुना जाता है वह इत्संज्ञक होता है। यह इत् संज्ञा है जो जाता है या नष्ट होता है। वह इत् है। इस प्रकार उस इत् का नाशसम्भव होने से शास्त्र के बिना खम् विधान व्यर्थ है। इस प्रकार ण् को आदि लेकर इत्संज्ञक हैं।

२. विधिसूत्रम् – नाशः खम्।।१.१.६१।।

प्रसक्तस्य नाशः ख-संज्ञो भवति (यस्येत्संज्ञा तस्य खम्)

अर्थ-विद्यमान का नाश ख संज्ञक होता है जिसकी इत्संज्ञा है, उसका खम् होता है। यानी लोप अथवा अभाव होता है।

विशेष– खम् करने का अर्थ है कि **"कार्याथो प्रयोगीत्"** आदि सूत्रों से जिसका इत् होता है उसका लोप यानी अभाव जानना चाहिए।

अर्थात्'– **"अइउण"** आदि सूत्रों में ण् आदि इत्संज्ञक होने से लोप हो जाते हैं। ये ण् आदि अण् आदि प्रत्याहार बनाने के साधन हैं।

३. संज्ञासूत्रम् – अन्त्येनेता दिः।।१.१.७३।।

अन्त्येनेत्संज्ञकेन ग ह्यमाण आदिस्तन्मध्यपतितानामात्मना सह ग्राहको भवति। यथा

अणिति अइउवर्णानां संज्ञा। एवमच् हल् इत्यादयः।

अर्थ-अन्त्य इत् संज्ञक से युक्त रहने वाला आदि वर्ण, मध्यवर्ण, अन्तिम वर्ण, अपने साथ का ग्राहक होता है। यथाण्–जैसे अण् यइ अ इ उ वर्णों की संज्ञा है।

कहने का तात्पर्य यह है कि, जैसे किसी सूत्र में अण् प्रत्याहार या अक् अथवा अच् प्रत्याहार का वर्णन किया हो तो अच् प्रत्याहार के अन्तर्गत अ इ उ ऋ ल ए ओ ऐ औ ये वर्ण लिये जायेंगे। किसी ने कहा कि ण् क् जो इत् संज्ञक उसको भी ग्रहण कर लिया जाये, परंतु उनका ग्रहण नहीं होगा क्योंकि चौदह सूत्र में अगर किसी सूत्र में अल् प्रत्याहार कहा तो कुछ वर्ण दो बार हो जायेंगे । अतः जो प्रत्याहार का वर्णन करेंगे वह उसी का बोधक होगा। इन सूत्रों के माध्यम से चवालीस (४४) प्रत्याहार बनते हैं। यह प्रत्याहार बनाने वाला सूत्र है। **"प्रत्याहार"** का अर्थ है – संक्षेप में कथन। अ इ उण् आदि १४ सूत्रों से प्रत्याहार बनाए जाते हैं। व्याकरण में इन प्रत्याहारों का बहुत अधिक उपयोग होता है। अतः प्रत्याहार बनाने का ढंग ठीक समझ लेना चाहिए। प्रत्याहार बनाने के नियम ये हैं– (१) **'अइउण्'** आदि सूत्रों के अंतिम अक्षर (ण् क् आदि) प्रत्याहार में नहीं गिने जाते हैं। अंतिम अक्षर केवल प्रत्याहार बनाने के साधन हैं। (२) जो प्रत्याहार बनाना हो, उसके लिए प्रथम अक्षर सूत्रों में जहाँ हो, वहाँ ढूँढना चाहिए। अंतिम अक्षर सूत्रों के अंतिम अक्षरों में ढूँढिए। बीच के सारे अक्षर उस प्रत्याहार में माने जाएँगें जैसे–अण्–अ से लेकर अ इ उ ण के ण् तक अर्थात् अ इ उ ये तीन वर्ण लेना। इसी प्रकार अन्य प्रत्याहार बनाने चाहिए। उन चवालीस प्रत्याहारों का किस सूत्र में कथन किया है यह दर्शाते हैं। यथा–

	प्रत्याहार	**स ज्ञा वर्ण**	**उदाहरण सूत्र**
१.	अण्	अ, इ, उ	**"रन्तो णुः"**
२.	अक्	अ, इ, उ, ऋ, ल	**"स्वे र्कोदीः"**
३.	इक्	इ, उ, ऋ, ल	**"अचीकोयण्"**
४.	उक्	उ, ऋ, ल	**"उगिहन्नान्डी"**
५.	एङ्	ए, ओ	**"एङो ति पदान्तात्"**
६.	अच्	सम्पूर्ण स्वर	**"अचीको यण्"**
		(अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ , ल , ल ....,ए,ऐ,ओ,औ)	

७.	इच्	अ को छोड़ सम्पूर्ण स्वर	**"नेच्यात्"**
८.	एच्	ए,ओ,ऐ,औ	**"एचो यवायावः"**
९.	ऐच्	ऐ, औ	**"आदैगैप्"**
१०.	अट्	स्वर;ह्,य्,व्,र्	**"अट्कुप्वाङ् व्यवाये पि"**
११.	अण्	स्वर;ह् और अन्तःस्थ (य,र,ल,व)	**"अणुदित्स्वस्यात्मना भाव्यो तपरः"**
१२.	इण्	अ को छोड़ स्वर; ह्; अन्तःस्थ (य,र,ल,व)	**"वेटः"**
१३.	यण्	य,र,ल,व	**"अचीको यण"**
१४.	अम्	स्वर;ह्;अन्तस्थ;वर्णप चम (ङ्,ञ,ण्,न्,म्)	**"पुमः खय्यम्परे सीसुक्"**
१५.	यम्	अन्तःस्थ;, वर्णप चम	**"हलोयमां यमिखम्"**
१६.	ञम्	ञ्,म्,ङ्,ण्,न्	
१७.	ङम्	ङ्,ण्,न्	**"ङमो नित्यं ङमुट् प्रात्"**
१८.	यञ्	अन्तःस्थ;वर्णप चम;झ,भ्	**"यञ्यतो दीः"**
१९.	झष	झ,भ्,घ्,द्,ध्	**"एकाचो बशो भष् झषःस्ध्वोः"**
२०.	भष्	भ्,घ्,द्,ध्	**"एकाचो बशो भष् झषःस्ध्वोः"**
२१.	अश्	स्वर;ह्; अन्तःस्थ; वर्गों के प चम–चतुर्थ–त तीय	**"ओद पूर्वस्य यो शि"**
२२.	हश्	ह्;अन्तःस्थ; वर्गों के प चम–चतुर्थ–त तीय	**"रेरद्धशो"**
२३.	वश	व्,र्,ल् वर्गों के ५–४–३	**"वशि"**

२४.	जश्	ज्,ब्,ग्,ड्,द्	**"झलो जश्"**
२५.	झश्	वर्गों के ४–३	**"झलां जश् झशि"**
२६.	बश्	ब्,ग्,ड्,द्	**"एकाचो बशो भप् झषःस्ध्वोः"**
२७.	छब्	छ्,ठ्,थ्,च्,ट्,त्	**"नश्छव्यप्रशान्"**
२८.	ययं	अन्तःस्थ; सब वर्ग	**"यय्यनुस्वारस्य परस्वम्"**
२९.	मय्	ञ् को छोड़कर सब वर्ग	**"मयोवो च्युञः"**
३०.	झय्	वर्गों के ४–३–२–१	**"झयो हः"**
३१.	खय्	वर्गों के प्रथम तथा द्वितीय	**"पुमःखय्यम्परे सीसुक्"**
३२.	चय्	च्,ट्,त्,क्,प्	
३३.	यर्	अन्तःस्थ; वर्ग श्,ष्,स्	**"यरो ञो विभाषाञे"**
३४.	झर्	वर्गों के ४,३,२,१;श्,ष्,स्	**"झरो झरि स्वे"**
३५.	खर्	वर्गों के १,२; श्,ष्,स्	**"खरि"**
३६.	चर्	च्,ट्,त्,क्,प्,श्,ष्,स्	**"चे चर्त्वम्"**
३७.	शर्	श्,ष्,स्	**"ङ्णौः कुक्टुक्शरि"**
३८.	अल्	सब स्वर; सब व्य जन	**"अन्ते लः"**
३९.	हल्	सब व्य जन	**"हलोन्तरा स्फः"**
४०.	वल्	य् को छोड़ सब व्य जन	**"वलि व्योः खं"**
४१.	रल्	य्,व् को छोड़ सब व्य जन	**"वचिलु च्य त्त षिमिष क ष"**
			"व्युञो वोहनः संश्च"
४२.	झल्	वर्गों के ४,३,२,१; ऊष्म	**"झलो झाली"**
४३.	रँ	र्,ल्	**"रन्तो णुः"**

४. संज्ञासूत्रम् – आकालो च् प्रदीपः।।१.२.११।।

अ आ आ३ इत्येवं काल इव कालो सो च् यथासंख्यं प्रदीप इत्येवं संज्ञो भवति। स प्रत्येकमुदात्तानुदात्तस्वरितभेदेन त्रिधा।

अर्थ- एकमात्रिक, द्विमात्रिक तथा त्रिमात्रिक अकार के उच्चारणकाल के सद श जिस अच् का उच्चारणकाल हो, वह अच् क्रमशः प्र,दी,प संज्ञक होता है और वह अच् के तीनों भेदों में हर एक के उदात्त, अनुदात्त और स्वरित के भेद से तीन भेद होते हैं।

विशेष-"प्र को ह्रस्व, दी को दीर्घ और प को प्लुत कहते हैं। "

५. संज्ञासूत्रम् – उच्चनीचावुदात्तानुदातौ।।१.१.१३।।

तालवादिस्थान ऊर्ध्वभागनिष्पन्न उदात्तसंज्ञो भवति। नीचभागनिष्पन्नो नुदात्तः।

अर्थ- तालु आदि स्थानों में जो अच् ऊपर के भाग से बोला जाता है। उसे उदात्त कहते हैं और तालु आदि के अधोभाग से जो अच् बोला जाता है वह अनुदात्त संज्ञक कहलाता है। कण्ठ, तालु आदि के दो भाग हैं–एक ऊपरी और दूसरा नीचे का। ऊपरी भाग से उत्पन्न स्वर उदात्त होता है और नीचे के भाग से उत्पन्न स्वर अनुदात्त होता है।

६. संज्ञासूत्रम् – व्यामिश्रः स्वरितः।।१.१.१४।।

उच्चनीयगुणव्यामिश्रो च् स्वरितसंज्ञो भवति। स नवविधो पि ङसंज्ञको ङसंज्ञक इति द्विविधः।

अर्थ- उदात्त और अनुदात्त धर्म से मिला हुआ अच् स्वरित संज्ञक होता है। अर्थात् तालु आदि स्थानों के मध्य भाग से जिस स्वर की उत्पत्ति होती है, उसे स्वरित कहते हैं। वह नव प्रकार का अच् ङसंज्ञक और अङसंज्ञक के भेद से दो प्रकार है।

विशेष - अच् की सबसे पहले प्र **"ह्रस्व"**, दी **"दीर्घ"** और प **"प्लुत"** ये तीन संज्ञाए की हैं। पुनः उदात्त, अनुदात्त और स्वरित ये तीन संज्ञा की। ३X३=९ भेद–होने के बाद प्रत्येक ङ (अनुनासिक) और अङ (अननुनासिक) ये दो भेद और मिलाने से ९ X २ =१८ इस प्रकार अ अठारह का बोधक होता है। इसी प्रकार इ और उ भी अठारह का बोधक है।

७. संज्ञासूत्रम् – नासिक्यो ङः।।१.१.४।।

नासिकायां भवो वर्णो ङसंज्ञो भवति। तदेवम् अ इ उ ऋ एषां प्रत्येकमष्टादशभेदाः। ल वर्णस्य द्वादश । तस्य दी-अभावात् । एचामपि द्वादश । तेषां प्राभावात् । कारसन्ध्यक्षराणां

प्रोनास्ति। अतस्तानि द्वादश प्रभेदानि।

अर्थ- नाक के माध्यम से जो वर्ण बोला जाता है, वह वर्ण ङ संज्ञक होता है। इस प्रकार अ इ उ ऋ ल ये प्रत्येक के अठारह भेद होते हैं। सन्ध्यक्षर वर्णों के प्र को छोड़कर दी और प वर्णों से युक्त बारह भेद होते हैं। अर्थात् ए,ओ,ऐ, और औ ये प्र (ह्रस्व) वर्ण नहीं होते हैं। कहा भी है– **"एकारादीनि सन्ध्यक्षराणि" "कात्रन्त्ररूपमाला सूत्र न. ६"** ए ओ ऐ औ इनके ह्रस्व नहीं होते हैं अतः ये बारह भेद वाले हैं। अठारह भेद कैसे होते हैं तो **"आकालो च् प्रदीपः"** आदि सूत्र के माध्यम से बता चुकें हैं।

८. संज्ञासूत्रम् – सस्थानक्रियं स्वम्।।१.१.२।।

ताल्वादिस्थानमाभ्यन्तर क्रिया च यदीये च यदीये यदीयाभ्यां तुल्ये तन्मिथः स्वसंज्ञं भवति। रेफोष्मणां स्वं नास्ति ।

अर्थ- तालु आदि स्थान और आभ्यन्तर क्रिया ये दोनों जिस वर्ण के साथ तुल्य हो तो वह वर्ण स्व संज्ञक होता है। "रेफोष्मणां नास्ति।"

अर्थ- रेफ् और उष्ण वर्णों की स्व संज्ञा नहीं होती है।

वार्तिकम् – <u>"ऋकालृकारयोः स्व संज्ञा वक्तव्याः"।।</u>

अर्थ- ऋकार और ल कार भी स्व संज्ञक कहना चाहिए।

"अकुहविसर्जनीयाः कण्ठया"

अर्थ- अठारह प्रकार का अवर्ण, कवर्ग, हकार और विसर्ग इनका बोलने का स्थान कण्ठय है।

अर्थ- जिह्वामूली का स्थान जिह्वय है। अठारह प्रकार के इवर्ण, शकार, यकार, चवर्ग, ए, ऐ इनका स्थान तालव्य है। अठारह प्रकार का उवर्ण, पवर्ग, ओ, औ और उपध्मानीय इनका स्थान ओष्ठा है। ल , तवर्ग, ल, सकार इनका स्थान दन्त्य है। अनुस्वार का स्थान नासिक्य है। इस प्रकार स्थान कहे गये।

नोट- ए,ऐ इनके बोलने का स्थान कण्ठ और तानु है। ओ, औ का स्थान कण्ठ और तालु है क्योंकि ये वर्ण दो वर्णों के संयोग से बनते हैं। **"वकारस्य दन्तोष्ठम्"** बकार का स्थान दन्त और ओष्ठ है।

यत्न को क्रिया कहते हैं। **"द्रव्यस्य देशान्तरप्राप्तिहेतुरान्तरं परिस्पन्दः क्रिया।"** वह क्रिया दो प्रकार की है। आभ्यान्तर (अन्दर का) और बाह्य (बाहर का) के भेद से। आभ्यन्तर क्रिया चार प्रकार की है। स्प ष्ट, ईषत्स्प ष्ट, ईषद्विव त और संव त के भेद से। उनमें वर्गों का स्प ष्ट है। ईषत्स्प ष्ट को करने वाले अन्तःस्थ है। ईषद्विव त को करने वाले ऊष्म वर्ण हैं। विव त को करने वाले स्वर वर्ण हैं। संव त कारण को कोई अवर्ण का पा चवा– मानते हैं। प्र अ का प्रयोग की अवस्था में संव त प्रयत्न होता है और प्रक्रिया (रूप–निर्माण) की अवस्था में विव त प्रयत्न होता है। बाह्य क्रिया आठ प्रकार की है। विवार, संवार, श्वास, नाद, घोष, अघोष, अल्पप्राण और महाप्राण आदि भेद है। वर्गों का प्रथम, द्वितीय और श,ष,स और विसर्ग इनके श्वस, अघोष और विवार में बाह्य क्रिया है। वर्गों के त तीय, चतुर्थ, प चम, हकार और यण् **"य,र,व,ल"** इनके संवार, नाद और घोष ये बाह्य क्रिया है। वर्गों के प्रथम, त तीय, प चम, य,र,ल और व ये वर्ण अल्पसंज्ञक हैं। वर्गों के द्वितीय, चतुर्थ शल् **"श,ष,स,ह"** ये वर्ण महाप्राण संज्ञक हैं। कवर्ग को आदि लेकर पा च वर्ग हैं। **"कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग और पवर्ग के नाम से। "ते वर्गाः प च प च प च"** कातन्त्र रूपमाला सूत्र नं. १२।" य,र,ल,व अन्तःस्थ कहलाते हैं। **"अन्तःस्था यरलवाः"** कातन्त्र १६। श,ष,स और ह ये उष्म कहलाते हैं। अच् प्रत्याहार को स्वर कहते हैं। **"तत्र चतुर्दशादौ स्वंशः"** कातन्त्रर अच् प्रत्याहार के अन्तगर्त किसी भी एक स्वर के ऊपर जो एक शून्य "०" रहता है। उसे अनुस्वार कहते हैं और स्वर के आगे जो दो शून्य ':' रहते हैं उसे विसर्ग कहते हैं। क् अथवा ख् वर्ण से पूर्व अर्ध विसर्ग '॑' के सद श उच्चारण को उपध्मानीय कहते हैं।

"वकारो दन्तोष्ठयः। ऋटुरषा मूर्धन्याः। एदैतौकण्ठतालव्यावेकेषाम्। ओदौतौ कण्ठोष्ठयावेकेषाम्। रेको दन्तमूल्य एकेषाम् ञमङणनाः स्वस्थानाः।

वकार का दन्तोष्ठय स्थान है। ऋ वर्ग, ट वर्ग, र,ष इनका स्थान मूर्धन्य है। ए और ऐ का स्थान कण्ठय और तालव्य है। ऐसा कोई कहते हैं। ओ और औ का कण्ठोष्ठय स्थान कोई कहते हैं। रेफ का दन्तमूल्य स्थान कोई कहते हैं। ञ, म, ङ, ण, न का स्वस्थान भी कहते हैं। " यह विषय महाव ति से लिया है।

(१) विवार–जिन वर्णों के उच्चारण में स्वरतन्त्री का मुँह खुला रहता है, उनका प्रयत्न विवार है। (२) संवार–जिन वर्णों के उच्चारण में स्वरतन्त्री का मुँह बन्द रहता है, उनका प्रयत्न संवार है। (३) श्वास–श्वास वर्णों के उच्चारण में अन्दर की वायु स्वरतन्त्री में झंकार या रगड़ किए बिना ही बाहर आती है। (४) नाद–नाद वर्णों के उच्चारण में अन्दर की वायु स्वरतन्त्री

भाषा का महत्त्व

भाषा मानवमात्र के भावों और विचारों के पारस्परिक आदान–प्रदान का सर्वोत्तम साधन है। भाषा के माध्यम से ही वह अपने विचारों को दूसरों तक पहुँचाता है और दूसरों के विचारों को ग्रहण करता है। यदि संसार में भाषा जैसी कोई वस्तु न होती तो संसार का काम नहीं चल सकता था। अत एव दण्डी का कथन मुख्य है कि **"वाणी के बिना संसार का काम नहीं चल सकता है। यदि शब्द नामक ज्योति संसार को प्रकाशित न करती तो यह सारा संसार अविद्या के अन्धकार से व्याप्त हो जाता"।**

भाषा शब्द भाष् (भाष व्यक्तायां वाचि– स्पष्ट बोलना) धातु से बना है। भाषा का अर्थ है व्यक्त वाणी अर्थात् जिसमें वर्णों का स्पष्ट उच्चारण होता है।

व्याकरण शब्द वि और आ उपसर्ग पूर्वक कृ धातु से यु (अन) प्रत्यय से बनता है। **"व्याक्रियन्ते विविच्यन्ते प्रकृतिप्रत्ययादयो यत्र तद् व्याकरणम्"** जिसमें शब्दों के प्रकृति (मूल शब्द या धातु) और प्रत्ययों आदि का विवेचन किया जाता है, उसे व्याकरण कहते हैं।

व्याकरण का उद्देश्य है – साधु या शिष्ट–प्रयोगोचित शब्दों का ज्ञान कराना, असाधु शब्दों का निराकरण, भाषा के स्वरूप पर नियन्त्रण रखना और प्रकृति–प्रत्यय के बोध द्वारा शब्दों के वास्तविक रूप का स्पष्टीकरण। पतंजलि ने व्याकरण के मुख्य रूप से पांच उद्देश्य बताऐं हैं।–

१. रक्षा, २. ऊह (तर्क), ३. आगम, ४. लघु और ५. असन्देह।

जो व्याकरण को नहीं जानता और अनभिज्ञ है, वह वाक् तत्त्व को देखते हुए भी नहीं देखता है और उसे सुनते हुए भी नहीं सुनता है। परन्तु जो वाक् तत्त्व को जानता है और शब्दवित् है, उसके लिये वाणी अपने स्वरूप को इसी प्रकार प्रकट करती है, जैसे स्त्री अपने स्वरूप को अपने पति के लिए।

आचार्य श्री शर्ववर्मकृत **"कातन्त्र–रूपमाला"** का हिन्दी अनुवाद ब्र. प्रदीप जी पीयूष द्वारा भाषा पर अधिकार प्राप्त करने के लिये ही किया गया है। सामान्यतया व्याकरण का इच्छुक यदि इस अनुवाद का आधार लेकर पठन करता है, तो वह अवश्य ही भाषा को हृदयंगत कर, जैनागम के रहस्य को प्रस्फुटित कर सकता है।

प्रस्तुत कातन्त्र–रूपमाला की पञ्च–सन्धि का प्रकाशन हो रहा है। यह अत्यधिक प्रसन्नता का विषय है। हम भी इस व्याकरण के हृदय को समझ सकें यही प्रार्थना वीर प्रभु से करते हैं।

पं. कोमल प्रसाद शास्त्री
५. ई २३, तलवण्ड़ी, कोटा (राज.)
०७४४–२४०६५३५३, ०६४१४४–८८६६१

पं. महेश चन्द शास्त्री
पुष्प पुंज, ३० सरलाबाग, दयालबाग
आगरा (उ.प्र.) ०६३५६७–६३५०८

सन्धि विवेचन

पञ्च–सन्धि – १. स्वर–सन्धि (अच्–सन्धि), २. प्रकृतिभावसन्धि, ३. व्यञ्जनसन्धि, ४. विसर्गसन्धि, ५. स्यादिसन्धि (स्वादिसन्धि)। सामान्य रूप में सन्धियाँ स्वर, व्यञ्जन और विसर्ग के रूप में प्रसिद्ध हैं। ये सन्धियाँ कहाँ आवश्यक हैं और ऐच्छिक हैं, इस सम्बन्ध में शास्त्र का निर्देश इस प्रकार है– सन्धि एक पद में, धातु और उपसर्ग के योग में तथा समास में नित्य होती है, किन्तु वाक्य में सन्धि करना या नहीं करना, कहने, लिखने वाले के इच्छाधीन है।

सन्धि विवेचन – सन्धि शब्द का जो अर्थ समाज में है, वही व्याकरण शास्त्र में भी है। जैसे समाज में सन्धि की विशेष शर्तें होती हैं, वैसे ही व्याकरण शास्त्र में भी प्रत्येक सन्धि के अलग–अलग नियम होते हैं। जिस प्रकार विरक्त या तटस्थ पुरुषों में सन्धि अथवा विग्रह का कोई प्रभाव नहीं पड़ता ठीक ऐसी ही स्थिति प्रकृतिभाव सन्धि की भी है। इसमे सन्धि करने से कोई परिवर्तन नहीं होता। कुछ सन्धियाँ ऐसी है, जिनमें सन्धि करने पर परिवर्तन होता है और पूर्ववत् भी रह जाता है, ऐसी स्थिति को "विकल्प" कहते हैं।

सन्धि स्वरूप – व्याकरण के नियमों के अनुसार स्वर, व्याकरण तथा विसर्गों के विकार युक्त मेल को सन्धि कहते हैं। यथा – सु + आगतम् = स्वागतम्। यदि दोनों वर्णों के मिलने से कोई परिवर्तन नहीं होता तो वह सन्धि नहीं अपि तु संयोग है। यथा – तत् + र् = तत्र। सन्धि करने से कहीं पर दो अक्षरों के बीच में एक अक्षर आ जाता है। जैसे नै + अक = नायकः। और कहीं पर अक्षर का लोप हो जाता है। यथा – स्त्रियः + आयान्ति =स्त्रिय आयान्ति इत्यादि।

सन्धि प्रयोग का सिद्धान्त – सन्धि वक्ता की इच्छा पर निर्भर करता है, इसकी पुष्टि में एक कारिका प्रसिद्ध है।

संहितैकपदे नित्या, नित्या धातूपसर्गयोः।
नित्या समासे वाक्ये तु, सा विवक्षामपेक्षते।।

अर्थात् वर्णों की अत्यन्त समीपता को संहिता कहते हैं, इसमें नित्य सन्धि होती है। यथा – जिन + इन्द्र = जिनेन्द्र। धातु और उपसर्ग के योग्य में नित्य सन्धि होती है। यथा – प्र + एजते = प्रैजते। समास में भी नित्य सन्धि होती है। यथा – जितानि इन्द्रियाणि येन सः = जितेन्द्रिय। वाक्य में सन्धि कार्य वक्ता के इच्छाधीन रहता है, चाहे वह करे या नहीं करे।

पं. सुमत प्रकाश जैन (चीफ. ईन्जी.रि.)
१–६३६ विद्याधर नगर, द्वारका स्वीट के पास
जयपुर (राज.) ०६४१३३००६१०

में झंकार करती हुई या रगड़ती हुई बाहर आती है, अतः इनके उच्चारण में झंकार या अनुरणन रहता है। (५) घोष–घोष वर्णे के उच्चारण में ध्वनि या गूंज रहती है। (६) अघोष–अघोष वर्णों के उच्चारण में ध्वनि या गूंज नहीं रहती है। (७) अल्पप्राण–इन वर्णों के उच्चारण में अन्दर की थोड़ी वायु का उपयोग होता है। (८) महाप्राण– इन वर्णों के उच्चारण में अन्दर की अधिक वायु का उपयोग होता है। जिह्वामूलीय–यह ध्वनि जीभ की जड़ के पास से निकलती है। उपध्मानीय– यह ध्वनि ओष्ठ से कुछ अधिक श्वास के बल के साथ बोली जाती है। अतः सामान्यतया इनके उच्चारण में प्प, प्फ जैसी ध्वनि होती है।

"स्थान बोधक चक्र"

कण्ठयः कण्ठय	जिह्वयाः कण्ठय	तालव्यः मूर्धन्या	ओष्ठोयोः	दन्त्याः	जासिक्य	दन्तोष्ठय
			तालव्य	ओष्ठय		
अ	इ उ	ल ञ्	व्	ए ओ		ऋ
क् ँक	श् प्	त् म्		ऐ औ		ट्
ख् ँख	य फ्	थ् ङ्				ठ्
ग्	य् ब्	द् ण्				ड्
घ्	छ् भ्	ध् न्				ढ्
ङ्	ज् म्	न् न्				ण्
ह्	झ् ओ	ल्				र्
:	म् औ	स्				ष्
	ँप					
	ँफ					

"आभ्यान्तर-क्रिया-बोधक चक्र"

"अन्ये"

स्पष्ट	ईषत्स्वष्ट	विवृतम्	ईषद्विवृतम्	संवृत
क्,ख्,ग्,घ्,ङ्	य्	अ,इ	श्	अ,आ
च्,छ्,ज्,झ्,ञ्	व्	उ,ऋ	ष्	
ट्,ठ्,ड्,ढ्,ण्	र्	ल,ए	स्	
त्,थ्,द्,ध्,न्	ल्	ओ, ऐ	ह्	
प्,फ्,ब्,भ्,म		औ		

"अथ बाह्य क्रिया-बोधक चक्र"

श्वासः अघो षः, विवारः		संवारः नादः घोषः अल्पप्राणः	महाप्राण
क्,ख्	ग्,घ्,ङ्	क्,ग्,ङ्	ख्,घ्
च्,छ्	ज्,झ्,ञ्	च्,ज्,ञ्	छ्,झ्,
ट्,ठ्	ड्,ढ्,ण्	ट्,ड्,ण्	ठ्,ढ्,
त्,थ्	द्,ध्,न्	त्,द्,न्	थ्,ध्,
प्,फ्	ब्,भ्,म	प्,ब्,म	फ्,भ्,
श्,ष्	ह्,य्,र्,ल्	य्,र्	श्,ष्
स्,:	व्	ल्,व्	स्,ह्

अकुहविसर्जनीयाः कण्ठ्याः।

हविसर्जनीयावुरस्यावेकेषाम्।

जिह्वामूलीयो जिह्व्यः।

इशयच्वेदैतस्तालव्याः।

एदैतो कण्ठतालव्यावेकेषाम्।

उप्वोदौदुपध्मानीया ओष्ठ्याः।

ओदौतौ कण्ठोष्ठ्यावेकेषाम्।

वकारो दन्तोष्ठ्यः।

ऋटुरसा मूर्धन्याः।

रेफो दन्तमूल्यैकेषाम्।

ऌतुलसा दन्त्या।

नासिक्यो नुस्वारः। ञमङणना स्वस्थानाः। इति स्थानानि।

क्रिया = यत्नः। स द्विधा आभ्यन्तरो बाह्यश्च।

आद्यश्चतुर्धास्प ष्टेषत्स्प ष्टेषद्विव तसंव त भेदात्। तत्र स्प ष्टकरणा वर्गाः ईषत्स्प ष्टकरणा अन्तःस्था। ईषद्विव तकरणा ऊष्माणः। विव तकरणाः स्वरा। संव तकरणं प चममवर्णस्येत्येके।

बाह्यश्चाष्टविधः। विवारः संवारः श्वासो नादो घोषो घोषो ल्पप्राणो महाप्राण इति भेदात्।

वर्गाणां प्रथम-द्वितीयाः शषसा विसर्गश्चैषां श्वासो घोषो विवारश्च। वर्गाणां त तीय-चतुर्थप चमा हकारो यणश्चैषां संवार नादो घोषश्च। वर्गाणां प्रथमत तीया प चमा यरलवाश् चाल्पप्राणाः। वर्गाणां द्वितीयचतुर्थो शलश्च महाप्राणाः। कवर्गादयः प चवर्गाः। यरलवा अन्तस्थाः। शषसहा ऊष्माणः। अचः स्वराः। अं अः इत्यचः परावनुस्वारविसर्गौ। कखाभ्यां प्रागर्धविसर्गोच्चारण उपध्मानीयः।

६. संज्ञासूत्रम् – अणुदित्स्वस्यात्मना भाव्यो तपरः।।१.१.७२।।

अणुदिच्च ग ह्यमाणः स्वस्य ग्राहको भवत्यात्मना सह भाव्यमानं तपरं च वर्जयित्वा। इदमण्ग्रहणं परेण णकारेण। कु चु टु तु पु एते उदितः। तदेवं अ इत्यष्टादशानां संज्ञा। तथेकारोकारौ। ऋकारस्त्रिंशतः एवं ल कारो पि। ऌवर्णस्य द्वादश। तस्य दीर्नास्ति। एचो द्वादशानाम्। तेषां प्रोनास्ति यवला द्विधा नासिक्येतरभेदात्। तेन द्वयोर्द्वयोः संज्ञा।

अर्थ- अण् और उदित् ग्रह्यमाण स्व का ग्राहक होता है, आत्मा के साथ भावमान और तपर को छोड़कर। यहाँ अण् का ग्रहण पर णकार से है। कु चु टु तु पु ये उदित कहलाते हैं। इस प्रकार अ अठारह का बोधक है। उसी प्रकार इकार, उकार भी अठारह का बोधक है। ऋकार तीस का बोधक है। उसी प्रकार ल कार भी तीस का बोधक है। ल वर्ण के बारह भेद होते हैं। ल का दी (दीर्घ) नहीं होता है। एच् प्रत्याहार भी बारह का बोधक है उनके प्र

(ह्रस्व) नहीं होता है। य,व,ल नासिक्य अनुनासिक्य के भेद से दो प्रकार का है। इसलिये उनकी भी दो संज्ञाएँ हैं।

विशेष- सूत्र का तात्पर यह है कि जैसे **"अचीकोयण्"** सूत्र में इक् और अच् स्व के साथ ग्रहमाण हैं। इसलिये सुधी+उपास्यः इसमें सुधी में रहने वाली ई संज्ञक है। अतः प्र और दी दोनों का ग्रहण होगा। इसलिये इस सूत्र के अन्तर्गत जो अण् प्रत्याहार कहा है वह पर णकार तक का बोधक है। कहा भी है–

परेणैवेण्ग्रहाः सर्वे, पूर्वेणैवाण्ग्रहा मताः।

बिना-ऋते णुदित्स्वस्येत्येतदेकं परेण तु।।

अर्थात्- इण् प्रत्याहार सभी में लण् वाले णकार तक तथा अण् प्रत्याहार **"अणुदित्स्वस्यात्मना भाव्यो तपरः"** (६) सूत्र को छोड़कर सभी जगह अइउण् वाले णकार से ग्रहण करना चाहिये।

"तपर को छोड़कर कहा है" इसका भाव यह कि–तः परो स्मात्तपरस्तादपि परस्तपरः। **"महाव त्ति"** तकार है परे जिससे अथवा तकार से परे अच् वह अगर प्र के साथ होगा तो प्र का बोध करायेगा, और दी एवं प के साथ होगा तो दी एवं प का।

यथा-"अदेङेप्" (२३) और **"आदैगैप्"** (२८) इन सूत्र में जो अत्, और आत् है वह तपर है तपर होने से वह अपने स्व का बोधक नहीं होगा। ध्यान रहे विभक्ति परक तपर भी हुआ करता है उसको यहाँ ग्रहण नहीं करना है। जैसे– **"आदेप्"** में जो आत् है वह अ शब्द के प चमी का रूप है। अतः यहाँ पर सूत्र लागू नहीं होगा इत्यादि जानना चाहिए।

१०. संज्ञासूत्रम् – सन्धौ।।४.३.६०।।

लोकत एव संश्लेषः सन्निकर्षो वा सन्धिरिति ज्ञातव्यम्।

अर्थ- मिलना या समीपता की संधि संज्ञा होती है।

११. संज्ञासूत्रम् – हलो नन्तराः स्फः।।१.१.३।।

अज्भिरव्यवहिता हलः स्फसंज्ञा भवन्ति।

अर्थ- अचों से व्यवधान रहित हलों की स्फ संज्ञा होती है।

१२. संज्ञासूत्रम् – सुम्मिङन्तं पदम्।।१.२.१०३।।

सुबन्तम्मिङन्तं च शब्दरूपं पदसंज्ञा भवति।

अर्थ- सुबन्त और भिङन्त शब्दरूप पद संज्ञक होते हैं।

विशेष- सु औ जस् इत्यादि सुबन्त हैं और मिप् वस् मस् इत्यादि भिङन्त हैं। शब्द के अन्त में लगने वाले स् औ अः आदि प्रत्ययों को सुप कहते हैं, अतः इन प्रत्ययों से बने हुए वीरः वीरौ वीराः आदि शब्दरूप सुबन्त कहे जाते हैं। इसी प्रकार धातुओं के अन्त में लगने वाले मिष् वस् मस् प्रत्यय मिङ् हैं और इनसे बनने वाले भवामि भवावः भवामः आदि धु रूप मिङन्त हैं। ये सुबन्त और मिङन्त पद कहे जाते हैं।

।। इति सन्ध्युपयोगि स ज्ञा प्रकरणम्।।

"इस प्रकार संज्ञा प्रकार पूर्ण हुआ"

अथाच् संधिप्रकरणम्

१३. विधिसूत्रम् – अचीको यण्।।४.३.६५।।

अचि परतः इकः स्थाने यणादेशो भवति सन्धिविषये। मुनि उपास्य इति स्थिते।

अर्थ- अच् परे होने इक् (इ,उ,ऋ,ल) प्रत्याहार के स्थान पर यण् **"य्,व्,र्,ल्"** आदेश होता है। सन्धि के विषय में। अर्थात् इ ई को य् उ ऊ को व् ऋ ॠ को र् औ ल को ल् हो जाता है, बाद में कोई अच् (स्वर) हो तो।

नोट-यदि इक् के सामने समान स्वर हो तो इक् को यण् आदि न हो कर **"स्वे को दी;"** (६८) सूत्र से दी (दीर्घ) सन्धि हो जायेगी। सन्धि के विषय में निम्नलिखित नियम स्मरण रखें–

संहितैकपदे नित्या, नित्या धातूपसर्गयोः।

नित्या समासे वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते।।

इन स्थानों पर सन्धिकार्य आदि अवश्य होते हैं– (१) एक पद में, (२) धातु और उपसर्ग के एकत्र होने पर, समास में । परंतु वाक्य में सन्धि विवक्षा अर्थात् वक्ता की इच्छा पर निर्भर है। अतः वाक्य में सन्धि–कार्य वक्ता की इच्छा के अनुसार होगा या नहीं होगा।

सन्धि का अर्थ है समबन्ध सुधी+उपास्यः यह स्थिति है अब प्रश्न उठता है कि, सु में रहने वाला इक् है, धी में रहने वाली ई इक् है, उपास्य का उ इक् है किस इक् के स्थान पर यणादेश करे ? इस शंका का समाधान हेतु अग्रिम परिभाषा सूत्र कहते हैं।

१४. परिभाषासूत्रम् – ईप्केत्यव्यवाये पूर्वपरयोः।।१.१.६०।।

ईपा यत्र निर्दिश्यते तत्र पूर्वस्या व्यवहितस्य कार्यं भवति। केति यत्र निर्दिश्यते तत्र परस्याव्यवहितस्य कार्यं भवति।

अर्थ- ईपा **"सप्तमी"** जहाँ कही हो, वही व्यवधान से रहित पूर्व के स्थान पर कार्य होता है। **"अचीको यण्"** सूत्र में अचि यह जो पद आया है उसका अर्थ, पर में, वही बात यहाँ कही जा रही है कि ईपा के होने पर, सु में जो इक् है उससे परे ध् है और ध् अच् है नहीं उसी प्रकार उपास्यः में रहने वाला उ इक् है उससे परे पा है, और प् भी अच् नहीं है। धी में रहने वाली ई उससे परे उपास्य का उ अच् प्रत्याहार है। अतः पुनः धी में रहने वाली ई के स्थान प यणादेश होगा। अब पुनः शंका हुई कि यण् तो चार है। य्,र्,ल्,व् कौन सा यण् करे तो अग्रिम परिभाषा सूत्र कहते हैं।

१५. परिभाषासूत्रम् – स्थाने न्तरतमः।।१.१.४७।।

स्थाने प्राप्यमाणानामन्तरतम एवादेशो भवति। अन्तरः प्रत्यासन्नः। यत्रानेकविध-मान्तर्यं तत्र स्थानक तमेवान्तर्यं बलीयः। सुध् य् उपास्य इति जाते।

अर्थ- प्राप्यमान स्थान में अत्यन्त समीप आदेश होता है। निकटता को अन्तर कहते हैं। जहाँ अनेक विधि का अन्तर हो वहाँ स्थानक त हि बलवान होता है। एक वर्ण के स्थान पर कई आदेश उपस्थित होने पर अत्यन्त सद श वर्ण ही होता है। उच्चारण स्थान की सद श्यता को सबसे अधिक प्रमुखता दी जाती है। **"संस्थानक्रियं स्वम्"** (८) सूत्र पर स्थान का वर्णन किया था। **"इशयच्चेदैतस्तालव्याः"** अतः तालु स्थान वाले इ ई के स्थान पर तालु वर्ण य् होता है। यानी ई के स्थान पर य् उ क् स्थान पर व् ऋ के स्थान पर र् और ल के स्थान पर ल् ये क्रम से आदेश होगा। **"शत्रुवदादेशः" "गुरूवदागमः"** अर्थात् जो खुद बैठ जाये और सामने वाले को हटा दे उसे आदेश कहते हैं और जो खुद भी रहे और सामने वाले को भी रहने दे उसे आगम कहते हैं वह मित्र के तुल्य होता है। अब प्रयोग सिद्ध करते हैं।

१. सुधी+उपास्यः= शोभना धीर्येषांते सुधियः तै उपास्यः। सुधीभिः उपास्यः इति सुधी उपास्यः। **"विद्वानो के उपासनीय, भगवान्"**

२. मधोः+अपनय इति मधु अपनय= **"दैत्य को दूर करने वाला"**

३. पित +अर्थः= पित्रे अर्थ इति पित +अर्थ= **"पिता के लिए अर्थः"**

४. ल +आकृतिरिव स्वरूपं यस्य सः लाकृति। **"टेढ़ी आकृति वाला"** यहाँ चार प्रयोगों को सूत्र के साधन से सिद्ध करते हैं। सुधी+उपास्य, मधु+अपनय, पित +अर्थ, ल +आकृतिः इस स्थिति में **"ईप्केत्यव्यवाये पूर्वपरयोः"** (१४) **"स्थानेन्तरतमः"** इन दोनों सूत्र की सहायता से **"अचीको यण्"** (१३) सूत्र से क्रम से सुध् य उपास्यः, मध् व् अपनय, पित् र अर्थः, ल् आकृतिः। ये आदेश हुआ। पुनः सूत्र लगात है।

१६. विधिसूत्रम् – अनचि।।५.४.१२७।।

अच उत्तरस्य यरो विभाषया द्वे भवतो चि तु न । इति धकारस्य द्वित्वे सुध् ध् य् उपास्य इति जाते।

अर्थ- अच् से परे यर् प्रत्याहार को द्वित्व होता विकल्प से, अच् परे होने पर द्वित्व नहीं होता है। सु में रहने वाला 'उ' अच् प्रत्याहार है, उससे परे 'ध्' यर् प्रत्याहार है (यर्–य्,व्,र्,ल् वर्णों के १ से ५ वर्ण श्,ष्,स्) तथा "ध्" से परे 'य्' अच् नहीं है अतः 'ध्' को द्वित्व (डबल) हो जावेगा। सुध् ध् य् उपासयः, मध् ध् ब् अपनय, पित् त् र् अर्थः, ल् के लिये द्वित्व नहीं होगा क्योंकि ल् अच् से परे नहीं है, और ल् से अच् भी परे है। अतः तीन में हि द्वित्व होगा, चौथा प्रयोग लाकृति सिद्ध हो गया है। द्वित्व पक्ष में अग्रिम सूत्र प्रव त होता है।

१७. विधिसूत्रम् – झलां जश् झशि।।५.४.१२८।।

झलां वर्णानां जशादेशो भवति झशि परतः। इति पूर्वधकारस्य दकारः।

अर्थ- झल् वर्णों के स्थान पर जश् आदेश होता झश् प्रत्याहार परे रहते। झल् प्रत्याहार–वर्ग के १,२,३,४ वर्ण और श्,ष्,स्,ह् झल् कहलाते हैं।

जश् प्रत्याहार– अपने वर्ग का त तीय अक्षर जश् कहलाते हैं।

झशं प्रत्याहार– अपने वर्ग का त तीय और चतुर्थ वर्ण झश् कहलाते हैं। 'ध' झल् है, द्वितीय 'ध' झश् है अतः पूर्व धकार को अपने वर्ग का त तीय वर्ण द् आदेश होगा। यह नियम

श्री शर्ववर्मकृतकलाप–व्याकरणस्य वादिपर्वतवज्रश्रीमद्भावसेनत्रैविद्यकृता टीका

कातन्त्र–रूपमाला

पञ्च–सन्धि

१. कातन्त्र–रूपमाला, २. जैनेन्द्र–महावृत्ति और ३.पाणिनि–व्याकरण की समानान्तर सञ्ज्ञाएँ

कातन्त्र में	जैनेन्द्र में	पाणिनि में
वर्ण	अल्	अल्
स्वर	अच्	अच्
व्यञ्जन	हल्	हल्
समानसञ्ज्ञक	अक्	अक्
सवर्ण	स्व	सवर्ण
ह्रस्व	प्र	ह्रस्व
दीर्घ	दी	दीर्घ
नामि	इच्	इच्
अनामि	(०)	(०)
सन्ध्यक्षर	एच्	एच्
असन्ध्यक्षर	अक्	अक्
अघोष	खर्	खर्
घोष	हश्	हश्
अशिट्	हय्	हय्
शिट्	शल्	शल्
ऊष्माण	ऊष्माण	ऊष्माण
धुट्	झल्	झल्
अधुट्	यम्	यम्
अनुनासिक	ञम्	ञम्
अन्तःस्थ	यण्	यण्

कातन्त्र–रूपमाला की सञ्ज्ञाएँ

वर्ण = ४७ ÷ अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ। क्, ख्, ग्, घ्, ङ्। च्, छ्, ज्, झ्, ञ्। ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्। त्, थ्, द्, ध्, न्। प्, फ्, ब्, भ्, म्। य्, र्, ल्, व्। श्, ष्, स्, ह्।

स्वर = १४ ÷ अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ।

व्यञ्जन = ३३ ÷ क्, ख् ग्, घ्, ङ्। च्, छ्, ज्, झ्, ञ्। ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्। त्, थ्, द्, ध्, न्। प्, फ्, ब्, भ्, म्। य्, र्, ल्, व्। श्, ष्, स्, ह्।

समानसञ्ज्ञक = १० ÷ अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ।

सवर्ण = २ ÷ अआ, इई, उऊ, ऋॠ, ऌॡ।

ह्रस्व = ५ ÷ अ, इ, उ, ऋ, ऌ।

दीर्घ = ६ ÷ आ, ई, ऊ, ॠ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ।

नामि = १२ ÷ इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ।

अनामि = २ ÷ अ, आ।

सन्ध्यक्षर = ४ ÷ ए, ऐ, ओ, औ।

असन्ध्यक्षर = १० ÷ अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ।

अघोष = १३ ÷ क्, ख्। च्, छ्। ट्, ठ्। त्, थ्। प्, फ्। श्, ष्, स्।

घोष = २० ÷ ग्, घ्, ङ्। ज्, झ्, ञ्। ड्, ढ्, ण्। द्, ध्, न्। ब्, भ्, म्। य्, र्, ल्, व्। ह्।

अशिट् = २६ ÷ क्, ख् ग्, घ्, ङ्। च्, छ्, ज्, झ्, ञ्। ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्। त्, थ्, द्, ध्, न्। प्, फ्, ब्, भ्, म्। य्, र्, ल्, व्।

शिट् = ४ ÷ श्, ष्, स्, ह्।

ऊष्माण = ४ ÷ श्, ष्, स्, ह्।

धुट् = २४ ÷ क्, ख् ग्, घ्। च्, छ्, ज्, झ्। ट्, ठ्, ड्, ढ्। त्, थ्, द्, ध्। प्, फ्, ब्, भ्। श्, ष्, स्, ह्।

अधुट् = ६ ÷ ङ्। ञ्। ण्। न्। म्। य्, र्, ल्, व्।

अनुनासिक = ५ ÷ ङ्। ञ्। ण्। न्। म्।

अन्तःस्थ = ४ ÷ य्, र्, ल्, व्।

श्री शर्ववर्मकृतकलाप–व्याकरणस्य

वादिपर्वतवज्रश्रीमद्भावसेनत्रैविद्यकृता टीका

कातन्त्र–रूपमाला

पञ्च–सन्धि

ग्रन्थकारस्य मङ्गलाचरणम्

पद के बीच में लगता है। **"पित् त् र् अर्थ;"** इस प्रयोग में 'पित्' का तकार झल् प्रत्याहार तो है परंतु द्वितीय तकार झश प्रत्याहार नहीं होने से त तीय वर्ण जश् आदेश नहीं होगा। इस प्रकार पूर्वध् के स्थान पर दकार आदेश हुआ। यहाँ भी **"स्थाने न्तरतमः"** (१५) सूत्र कि सहायता से क्रम से सु द् ध् य् उपास्यः, म द् ध् व् अपनय, पि त् त् र् अर्थः ये आदेश हुए हैं। अब विकल्पेतर पक्ष में अग्रिम सूत्र प्राप्त होता है।

१८. विधिसूत्रम् –

स्फान्त के पद का खं होता है। स्थिति इस प्रकार है, सु द् ध् य् उपास्य, विकल्पाभाव में सुध् य् ये स्फ पद है। (११) सूत्र से द् ध् य् अथवा ध ् य् ये स्फ संज्ञक है। १२ सूत्र से पद संज्ञा भी है। अतः दोनों पक्षों में खम् प्राप्त होता है। इसका निराकरण करने के लिये अग्रिम सूत्र प्रव त है।

–

ता–निर्दिष्ट का जो कथन अच्छा लगता है, वह वर्तमान अल् के अन्त स्थान पर होता है। इस प्रकार यकार को खं प्राप्त हुआ। अन्तरङ्ग ख हो जाने पर, बहिरङ्ग कार्य असिद्ध होता है। अन्तरङ्ग ख हो जाने पर, बहिरङ्ग कार्य यण् असिद्ध होता है। इसलिये य को खम् नहीं होगा।

विभक्ति सात होती है, जिनको क्रम–क्रम से प्रथमा, द्वितीया, ... सप्तमी इस प्रकार कहते हैं परंतु पूज्यपाद स्वामी जिनको कि देवनन्द्याचार्य कहते हैं वह विभक्ति न कह कर विभक्ति कहते हैं। इस विभक्ति के वर्ण अलग–अलग उसी नाम से विभक्ति कही है। जैसे– वा , इप् , भा , अप् , का ता और ईप् इस प्रकार विभक्ति के शब्द के आधार पर ही इन संज्ञाओं का उल्लेख किया है जो अन्यत्र देखने में नहीं आता है। अतः (१६) सूत्र की वार्तिक

में ता यह जो प्रयोग किया है वह (१८) में जो षष्ठी का प्रयोग किया उससे तात्पर्य यह है कि अन्त्य अल् के स्थान पर होता है। अतः अन्त्य अल् है य् उसका लोप प्राप्त हुआ। उसका परिहार करने के लिये परिभाषा है जिसका अर्थ बता चुके है। अन्तरङ्ग कार्य है खम् करना और बहिरङ्ग कार्य है यणादेश। अतः यण् आदेश असिद्ध होने पर सूत्र की द ष्टि में य् न हो कर ई दिखने लगा अथवा (यणः प्रतिषेधो वाच्यः) अर्थात् स्फान्त पद के अन्तिम वर्ण यण् (य् व् र् ल्) का लोप नहीं होता है। अतः ई को खम् न होने के कारण एक परिभाष है अथवा (कातन्त्र=२५) इसके माधयम से वर्णों को परस्पर में मिलाने पर सुद्धयुपास्यः पक्षे सुध्युपास्यः। मध्वपनय। मद्धव्पनय। पित्त्रर्थः, पित्रर्थः। लाकृतिः आदि प्रयोग सिद्ध होते हैं। चे+अनम्, लो+ अनम्, चै+ अकः तथा पौ+अकः। इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रव त्त होता है।

—

एच् प्रत्याहार के स्थान पर क्रम से अय्, अव्, आय् और आव् आदेश होता है अच् परे होने पर। एच् प्रत्याहार में ए, ओ, ऐ, औ ये चार वर्ण आते हैं उनके स्थान पर क्रम से अय्, अव्, आय् और आव् आदेश होता है। चे+अनम्, लो+अनम्, चै+अकः तथा पौ+अकः यहाँ चे, लो, चै तथा पौ में एच् प्रत्याहार है तथा अनम् आदि में आदि वर्ण स्वर है अतः क्रमशः अय् अव् आय् और आव् आदेश होंगे। क्रमात् पद के लिये अग्रिम परिभाषा सूत्र कहते हैं।

पद के अन्त में ए या ओ के बाद यदि 'अ' होगा तो अच् और अव् आदेश नहीं होंगे। शंका– तब क्या होगा ? समाधान– जब पद के अन्त में ए और ओ के बाद यदि आता है (३६) सूत्र से दोनों के स्थान पर एक पूर्व रूप होता है।

—

समान कार्य यथाविधि कार्य क्रम से होता है अर्थात् जिस क्रम से सूत्र प्रत्याहार कहा है उसी क्रम से ए–अय् ओ– ऐ–आय् औ–आव् आदेश होता है। जहाँ पर स्थानी

(जिसके स्थान पर आदेश होता है और आदेश जो किसी वर्ण के स्थान पर होता है) की संख्या बराबर हो, वहाँ पर आदेश क्रम से होते हैं। जैसे–ए को अय्, ओ को अब्, ऐ को आय्, औ को आव्।

१– चयनम् = चयते इति चयनम् = जाने वाला

२– लवनम् = लुनाति इति लवनम् = छेदने वाला

३– पुनाति = इति पावकः = पवित्र कर्त्ता

४– चायति–ते–चायकः = निरीक्षण करने वाला

चे+अनम् = चयनम्, लो+अनम् = लवनम्

चै+अकः = चायकः पौ+अकः = पावकः

गौ+यम्, नौ+यम्, गो+युति इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रव त्त होता है।

– _____

यकार आदि त्य परे होने पर ओ को अव् और औ को आव् आदेश होता है।

य से प्रारम्भ होने वाला प्रत्यय बाद में हो तो ओ को अव् और औ को आव् आदेश होता है।

१. गव्यं= गोर्विकारः= गव्यम् गवे हितम्=गव्यम्
आदि। गो+यम् स्थिति।

२. नद्यां जलं नाव्यं अथवा नावा–नौकया तार्यं–तर्तुं योग्यं, जलम्।
नौ+यम् स्थिति।

गो शब्द से यूति शब्द परे रहते भी अव् आदेश होता है अगर अर्थ उसका परिमाण नापने अर्थ में हो तो। गो+यूतिः वार्तिक से भव् आदेश होकर गव्यूतिः प्रयोग सिद्ध होता है। जैन दर्शन के अनुसार गव्यूति का अर्थ एक क्रोश और अन्य दर्शन की अपेक्षा २ क्रोश है। देव+इन्द्रः,गन्ध+उदकम्, तव+ऋद्धिः, तव+ल कारः इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रव त्त

होता है।

—

—

—

—

—

अत् और एङ् वर्ण की एप् संज्ञा होती है। त् से परे या त परे होने पर वह स्व संज्ञक को प्राप्त नहीं होगा। अतः सूत्र में अत् (अ) का अर्थ प्र (ह्रस्व) अ है। अत् से केवल का हि ग्रहण होगा दी, प्र का ग्रहण नहीं होगा।

—

अवर्ण से अच् प्रत्याहार परे रहते पूर्व पर के स्थान पर एप् होता है। लण् प्रत्याहार में जो ल उसमें रहने वाला अकार से संबंध होने से प्रत्याहार को ग्रहण करना। यह

परिभाषा अग्रिम सूत्र के लिए दर्शाई गई है।

१. अ या आ के बाद इ या ई होगा तो दोनों के स्थान पर होगा।

२. अ या आ के बाद उ या ऊ होगा तो दोनों के स्थान पर होगा।

३. अ या आ के बाद ऋ या ॠ होगा तो दोनों के स्थान पर (२५) सूत्र की सहायता से अर् होगा। इसी प्रकार 'ऋ' के स्थान पर यदि 'ल ' होगा तो वहाँ अन्य होगा।

१. देवेन्द्रः = देवानां इन्द्रः इति देवेन्द्रः

२. गन्धोदकम् = गन्धस्या उदकम् इति गन्धोदकम् देव+इन्द्रः,गन्धा+उदकम् इस स्थिति में अदेङेप् (२३) सूत्र से एप् संज्ञा हुई। पुनः सूत्र से व औ धा में रहने वाला अ–आ सामने परे इ, और उ दोनों के स्थान पर एप् रूप ए ओ आदेश होने पर देवेन्द्रः, गन्धोदकम् प्रयोग बनते हैं।

–

ऋकार और ल कार कि स्व संज्ञा है, यह पहले वार्तिक से कह आये हैं। ऋवर्ण के स्थाने पर अण् प्रत्याहार कथन करने की शैली से अन्त को होता है। कहना यह चाह रहे हैं कि सूत्र से एप् आदेश होता है। एप् तीन हैं। अ,ए ओ अवर्ण का स्थान कण्ठ है और इवर्ण का स्थान तालव्य है और ए का स्थान कण्ठय तालव्य है। अतः स्थान मिलाने से पूर्व और पर के स्थान पर ए और ओ एप् आदेश हुआ। अब तीसरा एप् अ है दोनों के स्थान पर आदेश करना है, स्थान दोनों के अलग–अलग हैं। यथा

तव में अवर्ण है और सामने ऋ और ल के रूप में अच् प्रत्याहार है अतः दोनों के स्थान पर एप् आदेश होगा; एप् है अ, जब अ आदेश हो गया तब यह सूत्र कहता है कि आपने जो अ आदेश किया, वह ऋ के स्थान पर है अतः यह अ स्वर और लपर रूप होगा । अर्थात ऋ के स्थान पर अर् ल के स्थान अल् आदेश होगा।

—

अवर्ण से परे वकार और यकार खम होता है, अश् प्रत्याहार परे रहते विकल्प से। अश् प्रत्याहार—स्वर, अन्तःस्थ, ह, वर्ग के तीसरे, चौथे और पाँचवें वर्ण ये अश् प्रत्याहार कहलाते हैं।

—

साद्विचार अध्यायों के प्रति सार्द्धपद सूत्र असिद्ध होते हैं और सार्द्धपाद सूत्रों में भी पूर्व सूत्र के प्रति पर सूत्र असिद्ध होता है। ते+इह, अस्मै+उद्धरति इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रव त्त होता है। आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी ने जैनेन्द्र व्याकरण को पाँच अध्यायों में बनाया है। प्रत्येक अध्याय में ४ पाद होते हैं। साढ़े चार अध्याय की द ष्टि में अगले दो पाद असिद्ध होते हैं और इन दो पादों में भी पूर्व सूत्र की द ष्टि में अगला सूत्र असिद्ध है। असिद्ध का अभिप्राय यह है कि पूर्व सूत्रों की द ष्टि में बाद के सूत्र के द्वारा किया गया कार्य ऐसा माना जाता है। त इह= ते+इह इस स्थिति में (२०) सूत्र से अय् आदेश हुआ २६ सूत्र से य् का खम् हो गया। खम् होने के बाद किसी ने कहाँ (२४) सूत्र से एप् आदेश कर दिया जाये तो उसका निवारण करने के लिये (२७) सूत्र ने फैसला दिया कि सद्विचार अध्याय की द ष्टि में सार्द्धपद का कार्य असिद्ध होता है। अतः सूत्र से जो य् का खम् किया है वह सूत्र की द ष्टि में असिद्ध है यानी य को खम् होते हुये भी सूत्र को य् दिख रहा है और य् दिखने से अवर्ण से परे अच् न होने के कारण एप् भी नहीं होगा तव रूप सिद्ध होता है। त इह। सूत्र विकल्प से लगता है जहाँ सूत्र नहीं लगेगा वहाँ दूसरा रूप जानना चाहिए। इसी प्रकार अस्मै+उद्धरति=अस्या उद्धरति यहाँ (२०) सूत्र से आय् आदेश होकर लोप हुआ है। विकल्प पक्षे अस्मायुद्धरति रूप बनता है।

जिन+ऐश्वर्यम्, तव+एषा, तव+ओदनम्, सा औपगवी इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रव त्त होता है।

—

अवर्ण से एच् प्रत्याहार परे रहते दोनों के स्थान पर एक ऐप् आदेश होता है। अ–आ के बाद ए या ऐ आने होगा तो दोनों के स्थान पर होगा। अथवा अ या आ के बाद ओ या औ होगा तो दोनों के स्थान पर होगा। यह एप् का अपवाद है। उदाहरण यथा– जिनैश्वर्यम्– जिन+ऐश्वर्यम् इस स्थिति में सूत्र से ऐप् संज्ञा हुई। पुनः सूत्र से एप् की प्राप्ति थी परंतु सूत्र से ऐप् आदेश होकर जिनैश्वर्यम् रूप बनता है।

सूत्र अवर्ण से अच् प्रत्याहार परे रहते कहता है और सूत्र अवर्ण से एच् प्रत्याहार कहता है। अच् प्रत्याहार में भी एच् प्रत्याहार गर्भित हो जाता है। उत्सर्ग और अपवाद सूत्र की प्राप्ति हुई तो निष्कर्ष यह निकला कि अगर अवर्ण से एच् प्रत्याहार है तो ऐप् आदेश होगा और अच् ये वर्ण हैं तो एप् आदेश होगा इतना विशेष जानना चाहिए। जिनैश्वर्यम् की तरह = यदि प्रयोग सिद्ध होते हैं। उप+एति, उप+एधते, विश्व+ऊहः इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रव त्त होता है।

—

आत् और ऐच् वर्ण की ऐप् संज्ञा होती है।

—

अवर्णान्त से परे एजादि एति, एधते और ऊठ् परे होने पर पूर्व+पर के स्थान पर ऐप् आदेश अवर्ण के बाद ए से प्रारम्भ होने वाला इण् (इ) और एध् धु (धातु) का कोई रूप हो या ऊठ् (ऊठ् आदेश वाला ऊ) हो तो दोनों के स्थान पर ऐप् (ए आ ऐ औ) एकादेश (एक आदेश वाला अक्षर) होता है।

उप+एति समीप पहुँचता है। उप+एति इति अवस्था में सूत्र से ऐप् की प्राप्ति थी परंतु अग्रिम सूत्र (३४) सूत्र से पररूप की प्राप्ति हुई उसका निराकरण करने के लिए (३०) सूत्र से पुनः ऐप् आदेश होता है। एति और एधते को हि एप् आदेश होता है अन्य किसी को नहीं। ऐप आदेश होकर उपैति रूप बनता है। इसी प्रकार = उप + एधते समीप बढ़ता है। उपैधते प्रयोग जानना।

विश्व+ऊहः = विश्ववाह शब्द से इप् का बहुवचन में शस् त्य आने पर ( ) सूत्र से वाह् शब्द के व् के स्थान पर ऊ आदेश होता है और वह ऊठ् कहलाता है। अतः सूत्र में जो ऊठ् का ग्रहण किया है उससे ऊठ् शब्द नहीं ले लेना ऊठ् संज्ञा का ग्रहण करना अब प्रयोग सिद्ध करते हैं।

विश्व+ऊहः इस स्थिति में सूत्र से एप् आदेश प्राप्त था उसको बाधकर (३०) सूत्र से पूर्व+पर के स्थान पर ऐप् आदेश हुआ विश्वौहः इति सिद्धम हुआ। शंका– एच् हो आदि में ऐसा क्यों कहा। समाधान– अगर एच् न कहते तो उपेतः = उप+इतः यहाँ इतः जो है वह इण् गतौ धातु का हि रूप है और इण् गतौ के कथन करने से इतः का भी ग्रहण हो जाता है और ग्रहण होने पर उपैतः ऐसा अनिष्ट रूप बन जाता है अतः यहाँ एच् का ग्रहण किया है यहाँ ऐप् न होकर एप् होता है। उप+इतः सूत्र से एप् आदेश होकर उपेतः प्रयोग बनता है।

प्र+इदिधत् यहाँ भी एध व द्धौ धातु का .... में बना है, परंतु एच् न होने के कारण ऐप् न होकर सूत्र से एप् आदेश होकर प्रेदिध ात् प्रयोग बनता है। अक्ष+ऊहिनी इस स्थिति में अग्रिम वार्तिक प्रव त्त होती है।

अक्षौहिणी सेनाः

अक्ष शब्द से ऊहिनी शब्द परे रहते ऐप् आदेश होता है।

इस अवस्था में सूत्र से एप् आदेश प्राप्त था। उसको बाधकर इस वार्तिक से ऐप् आदेश होकर अक्षौहिणी रूप बनता है। अक्षौहिणी सेना का प्रमाण= १०९३५० = योग = २१८७००

प्र+ऊहः, प्र+ऊढ, प्र+ऊढि, प्र+एष और प्र+एष्य इस स्थिति में अग्रिम वार्तिक प्रव त्त होती है।

प्रोहः। प्रौढिः। प्रैषः। प्रैष्यः।

प्र शब्द ऊह, ऊढ, ऊढि, एष और एष्य शब्द परे रहते पूर्व और पर के स्थान पर ऐप् रूप एक आदेश होता है यथा–

प्रौहः– प्र+ऊहः इस अवस्था में सूत्र से एप् आदेश प्राप्त था उसको निषेध करने के लिये इस वार्तिक से पूर्व और पर के स्थान पर ऐप् रूप एक आदेश होकर प्रौहः बनता है। इसी प्रकार–

प्रौढ़ = प्र+ऊढ़ः

प्रौढ़ि = प्र+ऊढ़िः

प्रैषः = प्र+एषः (२४) सूत्र से पर रूप प्राप्त था उसका निषेध किया है।

सुख+ऋतः इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रव त्त होता है।

सुखेन ऋतः सुखार्तः। भेति किम् परमर्तः। स इति किम्। सुखेनर्तः।

भा स में अवर्ण से ऋत शब्द परे होने पर पूर्व+पर के स्थान पर ऐप् रूप एक आदेश होता है।

भा का अर्थ होता है त तीया विभक्तिः से जो कि (१६) सूत्र पर समझा आये हैं। स का अर्थ होता है समास। अर्थात् त तीया समास में ऋत शब्द परे रहते दोनों के स्थान पर ऐप् आदेश होता है। यथा

सुखेन ऋतः = सुख+ऋतः इस स्थिति में (२४) सूत्र से एप् आदेश प्राप्त था परंतु वार्तिक से पूर्व+पर के स्थान पर ऐप् आदेश हुआ। (२५) सूत्र की सहायत से आर् ऐप् होकर सुखार्तः प्रयोग बनता है। इसी प्रकार दुःखेन ऋतः दुःखार्त इति। तो इस के लिये उदाहरण

हैं–

परमश्चासौ ऋतः इति परम+ऋतः

इस अवस्था में हालांकि यह स तो हे परंतु भा त तीया तत्पुरुष नहीं है अतः यहाँ ऐप् न होकर सूत्र से ऐप् आदेश हुआ है। यहाँ पुनः प्रश्न किया जाता है कि 'स' समास हो ऐसा क्यों कहाँ तो कहते हैं। सुखेनर्तः+सुखेन+ऋतः यहाँ समास न होने के कारण सूत्र से एप् आदेश हुआ है। ऋण+ऋणम्, दश+ऋणम्, प्र+ऋणम्, वत्सतर+ऋणम्, कम्बल+ऋणम्, वसन+ऋणम् इस स्थिति में अग्रिम वार्तिक प्रव त्त होती है।

—

—

—

—

—

ऋण, दश, प्र, व, वत्सतर, कम्बल, वसन इन शब्दों से ऋण शब्द परे रहते पूर्व+पर के स्थान पर ऐप् रूप आदेश होता है। यथा–

ऋण+ऋणम् इस अवस्था में ( ) सूत्र से एप् की प्राप्ति थी। तब इस वार्तिक से (२५) सूत्र की सहायता से आर् ऐप् आंदेश होकर ऋणार्णम् रूप बनता है। इसी प्रकार–

दश+ऋणम्

प्र+ऋमाम्

वत्सतर+ऋणम्

कम्बल+ऋणम्

वसन+ऋणम्

—

क्रिया के योग में प्र आदि शब्दों कि गि संज्ञा होती है। प्र आदि २२ होते हैं।

—

अर्थ से उपलक्षित भू आदि धु संज्ञक होते हैं।

प्र+ऋध्नोति,उप+ऋध्नोति इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रव त्त होता है।

—

अवर्णान्त से गि से ऋकार आदि धु परे रहते दोनों के स्थान, पर ऐप् रूप एक आदेश होता है।

प्र+ऋध्नोति व द्धि को प्राप्त यहाँ भी (२४) सूत्र से एप् आदेश की प्राप्ति थी, परंतु (३२) सूत्र से ऋ धू व द्धौ कि संज्ञा हुई। और (३१) सूत्र से प्र की गि संज्ञा है। तो अब प्र भवर्णान्त से ऋकार परे होने पर (३३) सूत्र से ऐप् आदेश हुआ (२५) सूत्र की सहायता से आर् ऐप् आदेश होकर प्रार्ध्नोति रूप सिद्ध होता है। इसी प्रकार उपार्ध्नोति—उप+ऋध्नोति उप+एलयति, उप+ओषति इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रव त्त होता है।

–

–

–

अवर्णान्त गि से एङ् आदि धु के परे रहते पररूप एक आदेश होता है। यथा–

उप+एलयति इस स्थिति में (२६) सूत्र से ऐप् आदेश प्राप्त था। परंतु सूत्र से उप में रहने वाला अकार को पररूप आदेश हो जाने से अकार ए में मिल गया प् हलन्त होने से ए उससे मिल जाने से उपेलयति रूप सिद्ध होता है। इसी प्रकार उपोषति=उपोषति

शक+अन्धु, कर्क+अन्धु, मनस्+ईषा इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रव त्त होता है।

–

–

अचों का जो अत्य अच् है वह है आदि में जिसके उस शब्द समूह रूप की टि संज्ञा होती है।

शकन्धु आदि शब्दों में पररूप होता है।

शक+अन्धुः इस स्थिति में (३८) सूत्र से पूर्व और पर के स्थान दी आदेश प्राप्त था। परंतु (३५) सूत्र से शक में रहने वाले अकार कि टि संज्ञा हुई टि संज्ञा होने पर

इस वार्तिक से जिस शब्द की टि संज्ञा होती है उसका पररूप होता है। अतः यहाँ दी न होकर पररूप आदेश होकर शकन्धुः रूप बनता है। इसी प्रकार–

= कर्क+अन्धुः = कर्कंधुः

= मनस्+ईषा = यहाँ मनस् में स्थित

अस् शब्द की टि संज्ञा होकर पर रूप आदेशे होकर मनीषा बनता है। इसी प्रकार– कुल+अटा = कुलटा, हल+ईपा= हलीषा, लाङ्गल+ईषा = लाङ्गलीषा, पतत्+अ जलि= पत जलि। यहाँ अत् की टि संज्ञा है। सार+अङ्ग= सारङ्गः, समि+अन्तः = सीमन्तः आदि।

शकन्ध्वादि आकृति गण है, अर्थात् जहाँ पर इस प्रकार का कार्य हुआ हो उसे शकन्ध वादि में मान लेना चाहिए। तव+ओंकारः इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रव त्त होता है।

—

—

—

अवर्णान्त से ओम् और आङ् परे रहते पूर्व+पर के स्थान पर, पररूप एक आदेश होता है।

तव+ओंकारः इस स्थिति में सूत्र से पूर्व+पर के स्थान पर ऐप् आदेश प्राप्त था, उसका निषेधकर (३६) सूत्र से तव का अकार को पररूप एक आदेश होकर तवोंकारः रूप सिद्ध होता है।

अद्य+आ+ऊढ़ा इस अवस्था में (३८) सूत्र से दी प्राप्त है और सूत्र से एप् आदेश प्राप्त है। तव एक परिभाषा है

जहाँ अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग कार्य एक साथ प्राप्त होता है तो वहाँ अन्तरङ्ग कार्य करना चाहिए। पुनः प्रश्न उठता है कि बहिरङ्ग और अन्तरङ्ग कार्य किसे कहते हैं तो पुनः एक

परिभाषा है, धातु और उपसर्ग का कार्य अन्तरङ्ग कहलाता है। आ यह उपसर्ग है और ऊढ़ा धातु है अतः अन्तरङ्ग कार्य सूत्र से एप् आदेश होने पर अद्य ओढ़ा ऐसी स्थिति बन जाने पर सूत्र से पररूप की प्राप्ति तो चल हि रही है। तो यहाँ शंकाकार शंका करता है कि सूत्र में ओम् और आङ् के लिए कार्य कहाँ है। परंतु यहाँ न तो आङ् है और न हि ओम् है तो यहाँ पररूप कैसे होगा तो इस के जवाब में अग्रिम सूत्र कहते हैं।

—

पूर्व और पर में जो कार्य किया जाता है। वह किये जाने पर भी एकदेशे होता है। अद्य ओढ़ा यहाँ आङ् को जो एप् एक आदेश किया है। वह कार्य होने पर भी आङ् कहलायेगा और आङ् होने से सूत्र से पररूप एक आदेश होकर अद्योढ़ा रूप सिद्ध होता है।

लोक+अग्रम्, कवि+इन्द्रः, मधु+उदकम्, पित +ऋषभः इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रव त्त होता है।

—

अक् प्रत्याहार से स्व अच् परे होने पर पूर्व+पर के स्थान में दी रूप एक आदेश होता है। अक् (अ इ उ ऋ ल) के बाद समान अक्षर हो तो दोनों को उसी वर्ण का दीर्घ अक्षर एकादेश हो जाता है। अर्थात्– अ या आ+अ या आ = आ। इ या ई + इ या ई = ई। उ या ऊ + उ या ऊ = ऊ। ऋ + ऋ = ॠ।

लोक+अग्रम् इस स्थिति में लोक का अकार और अग्रम् का अकार स्व संज्ञक है। अतः सूत्र से पूर्व और पर के स्थान पर दी रूप एक आदेश होकर लोकाग्रम् प्रयोग सिद्ध होता है। इसी प्रकार = कवीनाम्, इन्द्रः इति कवीन्द्रः कवि+इन्द्रः, मधु+उदकम् = मधूदकम्, पित +ऋषभः= पितृषभः। मुने+अनघ, साधो+अनघ इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्राप्त होता है।

–

पदान्त एङ् प्रत्याहार से अत् परे रहते दोनों के स्थान पर पूर्व रूप एक आदेश होता है। पद (सुबन्त या मिङन्त) के अन्तिम ए या ओ के बाद अ हो तो उसे पूर्वरूप (अर्थात् ए या ओ जैसा रूप) हो जाता है। अ हटा है, इस बात के सूचनार्थ अवग्रह चिह्न लगा दिया जाता है।

मुने+अनघ इस स्थिति में (२०) सूत्र से ए के स्थान पर अच् आदेश प्राप्त था। उसको बांधकर (३६) सूत्र से पूर्व+पर के स्थान पर अनघ के अकार को पूर्व रूप हो गया पूर्व रूप होने से मुने नघ रूपसिद्ध होता है। इसी प्रकार साधो + अनघ = साधो नघ रूप भी जानना चाहिए। शभ्+उ+अत्र इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रव त्त होता है।

–

मय् प्रत्याहार से परे अ ।, उसके उकार को व् होता है, विकल्प से अच् परे रहते पर। मय– । को छोड़कर वर्ग के १ से ५ वर्ण मय् प्रत्याहार कहलाते हैं।

१. शभु अत्र, शम्वत्र – शम् उ+ अत्र इस स्थिति में (१३) सूत्र से उ को यण् व प्राप्त था। उसको बाधकर (५७) सूत्र से उ कि नि संज्ञा हुई। नि कि पुनः (५६) सूत्र से नि को दि संज्ञा हुई और दि संज्ञा हो जाने पर ४।३।१०३।। सूत्र से संज्ञक और प संज्ञक से अच् परे रहते प्रकृति भाव होात है। प्रकृतिभाव का अर्थ वैसा का वैसा। तो यहाँ उ को प्रकृतिभाव भी प्राप्त हुआ । तब उसको बाधकर विकल्प रूप में (४०) सूत्र से उ के स्थान पर विकल्प से व् आदेश होता है। व् आदेश होने पर शम्वत्र रूप बनता है। जहाँ व् आदेश नहीं होगा वहाँ सूत्र से प्रकृतिभाव होने पर शभु अत्र वैसा का वैसा रूप बनेगा। इस प्रकार दो रूप बनेंगे। कुमारी+अत्र, दधि+अत्र इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रव त्त होता है।

—

इक् प्रत्याहार से अस्व अच् परे रहते प्र आदेश होता है, विकल्प से पदान्त आसपास में। प्र आदेश की सामर्थ्य से यहाँ यण् न हि होता है।

कुमारी+अत्र इस स्थिति में (१३) सूत्र से यण् आदेश प्राप्त था। उसको बाधकर (४६) सूत्र से विकल्प से प्र आदेश होता है। कुमारि अत्र प्र होने पर शंकाकार शंका करता है। कि प्र किये जाने के बाद सूत्र से यण् कर दिया जाये तो उसके समाधान में परिभाषा लिखते हैं। इस परिभाषा के माध यम से उत्तर देते हैं कि प्र आदेश किये जाने पर यण् आदेश नहीं होगा। अगर यण् आदेश हि करना होता है तो इह सूत्र अनर्थकारी होता। अतः यहाँ यण् आदेश नहीं होगा। प्र आदेश विकल्प से होता है। जहाँ प्र आदेश नहि होगा वहाँ सूत्र से यण् आदेश होकर कुमार्यत्र रूप बनेगा और विकल्प पक्ष में कुमारि अत्र रूप बनेगा। सविधौ ..... ? स्पष्ट करना है। अस्व ऐसा क्यों कहाँ अस्व अगर नहीं कहते तो दधि+इदम् इस अवस्था में (३८) सूत्र से स्व दीः होकर दधीदम् रूप बनता है। गिरि+आरोहणम् इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रव त्त होता है।

—

अच् प्रत्याहार से परे जो रेफ और हकार और इनसे परे यर् प्रत्याहार को द्वित्व होता है विकल्प से।

गिरि+आरोहणम् इस अवस्था में (१३) सूत्र से यण् आदेश होकर गिर् य् आरोहणम् इस स्थिति में अच् है गि में रहने वाली इ, और उससे परे है रेफ, और रेफ से परे य् जो कि यर् प्रत्याहार में आता है। अतः (४२) सूत्र से य् के लिये द्वित्व होने पर गिर्य्यारोहणम् रूप बनता है। सूत्र विकल्प करता है। अतः

जहाँ सूत्र नहीं लगेगा वहाँ गिर्य्यारोहणम् यह रूप बनेगा।

महा+ऋषि इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रव त्त होता है।

—

ऋकार से परे अस्व अक् प्रत्याहार को प्र आदेश होता है विकल्प से।

महा+ऋषिः इस स्थिति में (२४) सूत्र से एप् आदेश प्राप्त था। उसको बाधकर (४३) सूत्र से ऋ परे रहने पर महा के आ को प्र आदेश विकल्प से होता है। ह्रस्व आदेश होकर यह ऋषिः यहाँ फिर पूर्वोत्त शंका होती है कि सूत्र से एप् आदेश किया जाये समाधान दिया जा चुका है ? यह ऋषि रूप सिद्ध होता है। जहाँ सूत्र नहीं लगेगा वहाँ (२४) सूत्र से (२५) सूत्र की सहायता से अर् एप् आदेश होकर महर्षिः द्वितीय रूप बनता है।

—

शित् आदेश सभी के स्थान पर जानना चाहिए। शित् से तात्पर्य है जहाँ श् कि इत् संज्ञा होकर खम् होना है। अन्य व्याकरण में शित् के साथ अनेक अल् जिसके स्थान पर होता है। वह भी सबके स्थान पर होता है। यथा शित् का उदाहरण—

( ) ५।१।१७ लिङ् से जस् और शस् विभक्ति को शि आदेश होता है। शि में श् कि इत् संज्ञा होने से पूरे जस् और शस् के स्थान पर कार्य होगा। द्वितीय अनेकाल् का उदाहरण है ( ) सूत्र से भिस् विभक्ति के स्थान पर ऐस् आदेश होता है। ऐस् में ऐ और स् इस प्रकार दो अल् होने से पूरे भिस् के स्थान पर ऐस् आदेश होगा।

—

जो ङित् आदेश हों वह अनेक अल् होने पर भी अन्त अल् के स्थान पर ही होगा। यह सूत्र का अपवाद है, जैसा कि इस सूत्र की व्याख्या में बताया था कि अन्य शित् के साथ अनेकाल का भी कथन मिलता है उसी के अन्तर्गत यहाँ बता रहे हैं

कि जिसमें ङ कि इत् संज्ञा हो वह भले हि अनेक अल् हो परंतु वह अन्त्य अल् के स्थान पर हि आदेश होता है। गो+इन्द्रः इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रव त्त होता है।

—

अन्त्य गो शब्द को अन्त्य के स्थान पर अवङ् ओदश होता है। इन्द्र शब्द परे रहते। या इन्द्र शब्द में स्थित अच् परे रहते।

गो+इन्द्रः इस अवस्था में (२०) सूत्र से अव् आदेश प्राप्त था। उसको बाधकर इस सूत्र से गो के ओकार के स्थान पर अवङ् आदेश होता है। अवङ् आदेश में अनेक अल् है। अनेक अल् होने से पूरे गो शब्द के स्थान पर अवङ् आदेश होना था। परंतु इस परिभाषा सूत्र से अवङ् में (१) सूत्र से ङ् कि इत् संज्ञा होकर (२) सूत्र से ङ् का लोप हो गया। लोप होने पर ग् अव इन्द्रः, वर्ण मिलाने पर गव इन्द्रः इस स्थिति में सूत्र से पूर्व+पर के स्थान एप् आदेश होकर गवेन्द्रः रूप बनता है। गवाम् इन्द्रः इति गवेन्द्रः
गो+अग्रम् इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रव त्त होता है।

—

इन्द्र शब्द से अन्यत्र शब्द में जो अच् है उसके रहते गो शब्द को अवङ् आदेश विकल्प से होता है। विकल्प ग्रहण होने पर भी यहाँ नित्य ही होगा = गो+अक्षः

गो+अग्रम् इस स्थिति में प्रथम तो (२०) सूत्र से अव् आदेश प्राप्त था। उसको बाधकर (४७) सूत्र से विकल्प से गो के स्थान पर अवङ् आदेश हुआ ङ् कि इत् होकर लोप हुआ। गव अग्रम इस स्थिति में (३८) सूत्र से स्व को दी होकर गवाग्रम् रूप बनता है। अवाङ् के अभाव में सूत्र से गो को विकल्प से प्रकृति भाव यानी वैसा का वैसा, होकर गो अग्र् द्वितीय रूप बनता है। प्रकृतिभाव भी विकल्प से हि होता है। अतः प्रकृति के अभाव में (३६) सूत्र से अकार को पूर्व रूप होकर गो ग्रम् इस प्रकार त तीय रूप

बनता है।

अवङ् आदेश होकर स्व दी हुआ

प्रकृतिभाव हुआ

पूर्व रूप होकर बना है

–

छकार परे रहते हो तो प्र के अवयव को तुक् का आगम् होता है।

देव+छत्रं इस अवस्था में (४८) सूत्र से तुक् का आगम होने पर उ और क् कि इत् संज्ञा होकर लोप हो जाने पर देव त् छत्रं इस अवस्था में
(४६) सूत्र से त् के स्थान पर चकार आदेश होता है। च होकर देवच्छत्रं रूप बनता है। देवस्य छत्रं इति।

–

दी अन्त से परे छकार को तुक् का आगम् होता है। विकल्प से पदान्त में।

कुवली+छाया इस स्थिति में (४६) सूत्र से तुक् का आगम हुआ।

उक् का अनुबन्ध लोप होकर कुवली त् छाया इस स्थिति में (५६) सूत्र से तकार को चकार आदेश होकर कुवलीच्छाया रूप बनता है। ध्यान रहे तुक् का आगम विकल्प से होता है जहाँ तुक् नहीं होगा वहाँ कुवली छाया रूप बनेगा।

अथ प्रकृतिभावसन्धिः

५६. विधिसूत्रम् –

[३]।

अर्थ- दूर से बुलाने अर्थ में वर्तमान जो वाक्य उसकी टि को विकल्प से प होता है। आगच्छ भी देवदत्ता[३]। यहाँ देवदत्ता[३] यह प्लुत है। जब प्लुत नहीं होगा वहाँ देवदत्त रूप रहेगा। प प्लुत के संकेत के लिए उस स्वर के बाद ३ की सख्या लिखी जाती है और उच्चारण में वह वर्ण ह्रस्व की अपेक्षा तिगुने बल से बोला जाता है।

—

ईदन्त, ऊदन्त, एदन्त जो द्विवचन, वह दि संज्ञक होता है। दि संज्ञा होने से (५२) सूत्र से प्रकृतिभाव यानी सन्धि का अभाव होता है।

अग्नी+इति इस अवस्था में (३८) इस सूत्र से स्व दीर्घ की प्राप्ति थी। परंतु अग्नी यह शब्द प्रथमा और द्वितीया के द्विवचन का रूप है। यथा इकारान्त शब्द है। अतः (५१) सूत्र से अग्नी कि दि संज्ञक होने पर अग्रिम सूत्र प्रव त्त होता है।

—

दि संज्ञक और पसंज्ञक से अच् प्रत्याहार परे रहते प्रकृति भाव होता है। यानी संधि का अभाव। (५२) सूत्र से अग्नी इति अग्नी दि संज्ञक है। अतः दि संज्ञक को प्रकृति भाव होकर अग्नी इति रूप सिद्ध होता है। इसी प्रकार—

२. वायु इति यहाँ पर (१३) सूत्र से वायु जो कि वायु शब्द का द्विवचन है उसकी दि संज्ञा होकर प्रकृति भाव जानना।

३. खट्वे इति, यहाँ खट्वे यह खट्वा शब्द का द्विवचन है अतः यहाँ पर (२०) सूत्र से ए के स्थान पर अय् आदेश की प्राप्ति थी। उसको बाधकर दि संज्ञा होकर प्रकृति भाव जानना चाहिए। मणी इव यह भी द्विवचन है परंतु यहाँ प्रकृतिभाव नहीं है, स्व दी हुआ है।

–

–

–

–

३

वदत्त, देवदे३त्र। देवदत्ते३। अन त इति किम्? कृष्णमित्रे३। रोरिति किम्? देवदत्तस्य वकारात्परत्र मा भूत्। एकैकग्रहणं पर्यायार्थम्।

६३. संज्ञासूत्रम् –

दकार के स्थान पर हुआ मकार, उस मकार से परे ईत्, ऊत् कि दि संज्ञा होती है।

अमी+अत्र इस स्थिति में (१३) सूत्र से ई को यण् आदेश कि प्राप्ति थी। परंतु अमी यह अद्स शब्द के प्रथमा का बहुवचन है। अद्स जस् शब्द से ( ) सूत्र से साकार् के स्थान पर अकार आदेश हुआ। पुनः ( ) सूत्र से अकार को पूर्व रूप होकर अद जस् शेष बचा फिर ( ) सूत्र से जस् के स्थान पर शी आदेश हुआ श को इत् होकर खम् हो जाने पर ई शेष रहा। पुनः सूत्र से अकार और ईकार को एप् आदेश होकर अदे बन गया। पुनः ( ) सूत्र से दकार के स्थान पर मकार आदेश और एकार के स्थान पर ईकार आदेश होकर अभी शब्द सिद्ध होता है। अमी की दि संज्ञा होकर पूर्वोक्त प्रकृति भाव होकर अमी अत्र रूप निष्पन्न होता है। इसी प्रकार अमू आसाते, अमू शब्द अदस् शब्द के प्रथमा द्वितीया का द्विवचन है।

—

च आदि शब्द अगर द्रव्य से भिन्न हो तो उसकी नि संज्ञा होती है। द्रव्य से मतलब किसी कि संज्ञा हो तो वह द्रव्य है नहीं तो अद्रव्य है।

—

प्र आदि कि भी नि संज्ञा होती है द्रव्य भिन्न हो तो प्र आदि गण (३१) नम्बर सूत्र में मूल में ही कर आये हैं।

—

आङ् को छोड़कर एक अच् वाले नि की दि संज्ञा होती है। सं ज्ञा का फल प्रकृतिभाव होना है।

यह गि संज्ञक है और ङ् का अनुबन्ध लोप होकर आ शेष बचता है, यह एक अच् है परंतु फिर भी इसको दि संज्ञा न हि होगी। आ के ६ अर्थ हैं। दो अर्थों में ङित् नहीं माना है और ङित् न होने से दि संज्ञा होकर प्रकृतिभाव को प्राप्त हो जायेगा। यथा—

अल्प अर्थ में, क्रिया के योगे में, मर्यादा में और अभिविधि अर्थ में जो आ है उसे आङ् समझना चाहिये और वाक्य में और स्मरण अर्थ में ङित् भिन्न जानना चाहिये।

आ+उष्णम् = ओष्णम् यहाँ ( ) सूत्र से एप् आदेश होकर ओष्णम् बना है।

आ+उढ्रा = ओढ्रा यहाँ भी सूत्र से एप् आदेश हुआ है।

आ+ईसरी पर्यन्तं = एसरी पर्यन्तं मर्यादा का अर्थ सीमा तक आ+ईसरी का अर्थ है ईसरी को छोड़कर उसके पहले तक के ग्राम आदि।

आ+एकोनविंशतेः

(२६) सूत्र से ऐप् आदेश होकर ऐकोनविंशतेः रूप बनता है। मर्यादा और अभिविधि ा अर्थ में इतना अन्तर है कि मर्यादा में वह स्थान छूट जाता है और अभिविधि अर्थ में उसका भी ग्रहण हो जाता है। अब प्रयोग सिद्ध कर के बताते हैं।

अ+अपेहि इस स्थिति में (२६) सूत्र से स्व दी कि प्राप्ति थी परंतु अ यह एक अच् है एक अच् होने के कारण (५६) सूत्र से अ कि दि संज्ञा होकर (५२) सूत्र से अ को प्रकृतिभाव होकर वैसा रह जाने के कारण अ अपेहि रूप बनता है। इसी प्रकारर इ इन्द्रं। उ अवसर आदि रूप जानना चाहिये। ध्यान रखना उ अवसर यहाँ सूत्र प्राप्त था।

आ+एवं यहाँ पर (२६) सूत्र से ऐप् आदेश कि प्राप्ति थी। सूत्र से आ कि दि संज्ञा होती नहीं है। इसके लिये एक कारिका देते हैं। जैसा कि पूर्व श्लोक में दर्शा आये हैं कि आ वाक्य और स्मरण अर्थ में ङित् नहीं है। ङित् न होने के कारण (५६) सूत्र से आ कि दि संज्ञा होकर (५२) सूत्र से प्रकृति भाव होकर आ एवं नु मन्यसे रूप निष्पन्न होता है। इसी प्रकार आ एवं किलतत् रूप को जानना चाहिये।

—

ओकार अन्त वाला नि दि संज्ञक होता है।

अहो+इति इस स्थिति में (५४) सूत्र से अहो कि नि संज्ञा होकर (५६) सूत्र से नि कि दि संज्ञा होकर (५२) इस सूत्र से अहो इति यहाँ जो कि (२०) सूत्र से अव् ओदश कि प्राप्ति थी, परंतु अव् आदेश का निषेध कर प्रकृतिभाव को प्राप्त हुआ तब अहो इति रूप निष्पन्न होता है। साध ाो+इति इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रव त्त होता है।

—

निमित्तक ओकार है अन्त में जिसके उस ओकार से परे इति शब्द उसकी दि संज्ञा होती है विकल्प से।

साधोक्इति इस स्थिति में (२०) सूत्र से अव् आदेश की प्राप्ति थी। परंतु साधो जो कि साधु शब्द के सम्बोधन का रूप है जो कि आगे सिद्ध करेंगे। अब (५८) सूत्र से साधो शब्द को विकल्प से दि संज्ञा होकर (५२) सूत्र से प्रकृतिभाव होकर साधो इति यह रूप बना। दि संज्ञा विकल्प से होती है जहाँ दि संज्ञा नहीं होगी वहाँ (२०) सूत्र से अव् आदेश होकर साधव् इति इस स्थिति में (२६) सूत्र से व् का लोप हो जायेगा वहाँ साध इति यह द्वितीय रूप बनता है और लोप अभाव में साधविति यह त तीय रूप बनता है।

एङन्त गो शब्द से अकार परे होने पर विकल्प से प्रकृतिभाव होता है पदान्त में। यह सूत्र मूल में नहीं है ऐसा पहले ही बता चुके हैं।

अथ हल्सन्धिः

अब व्य जनों के साथ सन्धि कही जाती है। व्य जन सन्धि में व्य जन से परे व्य जन होने पर सन्धि होती है। जिनालयस्+शोभते, घन्यस्+चिनोति, तत्त्ववित+चिनोति, भवान्+झकारीयति इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रव त्त होता है।

सकार और तवर्ग के स्थान पर, शकार और चवर्ग के साथ योग होने पर शकार और चवर्ग आदेश होते हैं। स या तवर्ग से पहले या बाद में श् या चवर्ग दोनों में से कोई भी हो तो स् को श् औ तवर्ग को चवर्ग हो जाता है, अर्थात् त् को च् द को ज् और न् को ा् आदेश होते हैं।

जिनालयस्+शोभते इस स्थिति में जिनालयस् सकार से शोभते का शकार परे होने पर (६०) सूत्र से सकार के स्थान पर शकार आदेश हो कर जिनालयश्शोभते रूप सिद्ध होता है। इसी प्रकार धन्यस्+चिनोत यहाँ चकार परे हैं। तत्त्ववित्+चिनोति यहाँ तकार से चकार परे होने तकार को चकार आदेश होता है। भवान्+झकारीयति यहाँ नकार है उस नकार स परे झ जो कि चवर्ग है इसलिए नकार के स्थान पर ाकार् आदेश हुआ है। प्रश्+नः इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रव त्त होता है।

—

शकार से परे तवर्ग को जो कार्य कहाँ है वह कार्य नहीं होता है। यानी तवर्ग को चवर्ग आदेश नहीं होता है।

प्रश्+नः इस स्थिति में शकार और तवर्ग का योग है अतः (६०) सूत्र से नकार के स्थान पर ाकार की प्राप्ति थी। परंतु (६१) सूत्र निषेध होकर रूप सिद्ध होता है। कस्+षण्ढः, अश्वस्+टीकते, पेष्+ता, व हत्+टंकः इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रव त्त होता है।

—

सकार और तवर्ग के स्थान पर, षकारं और टवर्ग के साथ योग होने पर षकार और टवर्ग आदेश होता है।

कस्+षष्ढः इस स्थिति में (६२) इस सूत्र से कस् के सकार के योग में षष्ठः का षकार होने से स् के स्थान पर ष आदेश होकर कष्षण्ढः रूप सिद्ध होता है। इसी प्रकार = अश्वस्+टीकते= अश्वष्टीकते। पेस्+टा= पेष्टा। व हत्+टङ्कः = व हट्टङ्कः।

आदि प्रयोग जानना चाहिये। षड्+नाम, षड्+नवति, षड्+नगरी इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रव त्त होता है।

—

पदान्त टवर्ग से परे नाम् नवति नगरी के नकार को टवर्ग आदेश होता है। पदान्त टवर्ग से परे नाम, नवति और नगरी को छोड़कर अन्य तवर्ग को ष्टुत्व नहीं होता है। ऐसा नियमार्थ है।

षड्+नाम् इस स्थिति में (६२) सूत्र से नाम् के नकार के स्थान पर णकार की प्राप्ति थी। परंतु अग्रिम सूत्र (६३) सूत्र में विशेष नाम के साथ कथन होने से सूत्र (६३) से नकार को णकार आदेश होकर षड् णाम् रूप होने पर (६६) सूत्र से ड् को विकल्पसंङ् की प्राप्ति थी। परंतु नाम् में रहने वाला नकार प्रत्यय के परे होने से नुट् का आगम् होकर प्रत्यय रूप में मौजूद है। अतः वार्तिक से नित्यङ् को णकार होकर षण्णाम् रूप बनता है। इसी प्रकार षड्+नवति, और षड् नगरी के प्रयोग जानना परंतु इतना ध्यान रखना कि नवति और नगरी में रहने वाला नकार प्रत्यय नहीं है और प्रत्यय न होने के कारण (६६) सूत्र से विकल्प से डकार को णकार आदेश होकर षण्णवति और षण्णगरी रूप बनेंगे और विकल्प पक्षे षड् णवति और षड् णगरी ये दो रूप बनेंगे। पदान्त दो से परे कथन होने के कारण इनसे भिन्न शब्दों को यह कार्य नहीं होगा। यथा—

तत्त्वाम तलिट् + तरति इस अवस्था में (७२) सूत्र से तकार को टकार करने का आदेश था परंतु सूत्र (६३) में नियमार्थ कथन होने से निषेध को प्राप्त हो जाता है। तब तत्त्वाम तलिट् तरति इसी प्रकार का रूप बनेगा। इसी प्रकार षट् सन्तः यहाँ षत्व की प्राप्ति थी। यहाँ भी निषेध है। पद का अन्त हो ऐसा क्यों कहाँ अगर पदान्त न कहते तो ईट्+ते = ईष्टे यहाँ (६२) सूत्र का निषेध हो जाने से ईटते यह अनिष्ट रूप बन जाता। पदान्त टोः का हि कथन क्यों किया तो यहाँ भी कहते हैं कि अगर पदान्त टवर्ग से अगर नहीं कहते तो पदान्त षकार का भी ग्रहण हो जाता और पदान्त

षकार के ग्रहण होने पर सर्पिष+तमम् यहाँ भी सूत्र का निषेध हो जाने से सर्पिष् तमम् यह अनिष्ट रूप बनता।

—

षकार परे होने पर तवर्ग को टवर्ग आदेश नहीं होता है।

तीर्थकृत्+षोडशः इस स्थिति में (६२) सूत्र से तकार को टकार की प्राप्ति थी। परंतु (६४) सूत्र से निषेध होने पर तीर्थ कृत्षोडशः ही रूप बनता है। वाक्+ईशः इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रव त्त होता है।

—

पद के अन्त में वर्तमान के झल् प्रत्याहार के स्थान में जश् प्रत्याहार आदेश होता है। वर्ग का तीसरा अक्षर को छोड़कर सभी वर्ग और श् ह् ष् और स् ये झल प्रत्याहार के अन्तर्गत आते हैं और वर्ग का तीसरा अक्षर जश् प्रत्याहार में आता है। अतः स्थान प्रत्यय को मिलाकर यथायोग्य कार्य करना चाहिये। यथा—

वाक्+ईशः इस स्थिति में (६५) सूत्र से ककार के स्थान पर गकार आदेश होकर वागीशः रूप बनता है। सुवाक्+नयति इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रव त्त होता है।

—

ङ परे होने पर पदान्त यर् प्रत्याहार के स्थान पर विकल्प से यर् को ङ आदेश होता है। त्वङ्मयम्। त्य

परे होने पर यर् प्रत्याहार को नित्य ही ङ आदेश होता है। पद के अन्तिम यर् (ह् को छोड़कर सभी व्य जन) को विकल्प से ङ (अपने वर्ग का पंचम अक्षर) हो

जाता है, बाद में कोई ङ् (वर्ग का पंचम अक्षर) हो तो।

सुवाग्+नयति इस अवस्था में (६६) सूत्र से विकल्प से गकार के स्थान पर ङकार आदेश होकर सुवाङ् नयति रूप बनता है। जहाँ ङकार आदेश नहीं होगा वहाँ सुवाग् नयति रूप बनेगा।

त्वग्+मयम् इस अवस्था में सूत्र से विकल्प कर गकार को ङकार की प्राप्ति थी। परंतु मयम् यह पूरा त्य रूप आदेश है। अतः इस वार्तिक से नित्य ही ङकार आदेश होकर त्वङ्मयम् रूप निष्पन्न होता है। तडित्+लोला, भवान्+लोकेशः इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रव त्त होता है।

—

लकार परे रहते तवर्ग के स्थान पर लकार स्व आदेश होता है।

तडित्+लोला इस अवस्था में (६७) सूत्र से तकार के स्थान पर लकार आदेश होकर तडिल्लोला रूप बनता है। इसी प्रकार भवान्+लोकेशः = भवाल्लोकेशः। उद्+स्थानम्, उद्+स्ताम्भितव्यम् इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रव त्त होते हैं।

—

उद् से परे स्था और स्तम्भं को पूर्व स्व आदेश होता है। यहाँ स्था और स्तम्भ को उद् रूप पूर्व स्व की प्राप्ति हुई। तव (१४) सूत्र से जहाँ ईपा विभक्ति का कथन हो तो पूर्व के स्थान पर कार्य जानना और जहाँ का विभक्ति का निर्देश हो वहाँ पर के स्थान पर कार्य को जानना। अतः (१३) यहाँ अचि सप्तमी विभक्ति है अतः कार्य पूर्व के लिये होगा और (६८) यहाँ उदः यह का यानी प चमी विभक्ति है। अतः यहाँ स्था और स्तम्भ पर के स्थान पर कार्य होगा। (१६) सूत्र के माध्यम से स्था और स्तम्भ के अन्त के स्थान पर कार्य की प्राप्ति हुई उस अन्त के स्थान पर निषेध करने के लिए अग्रिम सूत्र प्रव त्त होता है।

पर के स्थान पर जो कार्य का विधान किया जाता है, वह कार्य उस के आदि वर्ण के स्थान पर होतो है। इस प्रकार सकार के स्थान पर पर थकार आदेश हुआ। अब प्रयोग दर्शाते हैं।

उद्+स्थानम्– इस स्थिति में

(१४) और (६६) इन दोनों सूत्र की सहायता से (६८) सूत्र से स्थानम् के सकार के स्थान पर बाह्य प्रत्यय मिलाने पर थकार आदेश हुआ उद् थ् थानम् स्थिति में पूर्व थकार का लोप करने के लिए अग्रिम सूत्र प्रव त्त होता है।

–

हल् प्रत्याहार से परे झर् प्रत्याहार का विकल्प से लोप होता है स्व झर् प्रत्याहार परे रहते। हल् यानी सभी व्य जनों के बाद झर् (वर्ग के १,२,३,४ और श् ष् स्) का विकल्प से लोप हो जाता है, बाद में सवर्ण (समान) झर् हो तो। अब यहाँ उद् थ् थानम् में दकार हल् प्रत्याहार है और उससे पर पूर्व थकार् झर् प्रत्याहार का है और उस से परे पर थकार स्व झर है अतः पूर्व थकार का खम् आदेश हुआ। अब पुनः दकार के स्थान पर तकार करने का विधान करते हैं।

–

झल् प्रत्याहार को चर् प्रत्याहार होता है खर् प्रत्याहार परे हो तो झल् प्रत्याहार–वर्ग के १,२,३,४ और ऊष्ण वर्ण। चर् प्रत्याहार– वर्ग के प्रथम अक्षर। खर् प्रत्याहार–वर्ग के १,२, श्,ष्,स् वर्ण। अतः अब उद् का दकार झल् प्रत्याहार है और उससे पर थानम् का थकार खर् प्रत्याहार है। अतः दकार के स्थान पर तकार आदेश होकर उत्थानम् रूप बनता है। इसी प्रकार उद्+स्तम्भितव्यम् = उत्तम्भितव्यम् का प्रयोग जानना है। सुवाक्+हसति इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रव त्त होता है।

–

पदान्त झय् प्रत्याहार से परे हकार के स्थाने पर पूर्व स्व आदेश होता है विकल्प से। महाप्राण और ऊष्माण हकार के स्थान पर पूर्व का चतुर्थी अक्षर होता है।

वर्ग के १,२,३ और ४ वर्ण के बाद हो तो उसे विकल्प से पूर्वस्व होता है, अर्थात् ह को पूर्व अक्षर के वर्ग का चतुर्थ अक्षर हो जाता है।

सुवाक्+हसति=इस स्थिति में (६५) सूत्र से सुवाक् के ककार के स्थान पर गकार आदेश होकर (७२) सूत्र से विकल्प से हकार के स्थान पर घकार आदेश होकर सुवाग्घसति रूप बनता है। विकल्पाभाव में सुवाग्हसति रूप बनेगा। धर्मविद+शेते इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रव त्त होता है।

–

पदान्त झय् प्रत्याहार से शकार परे हो तो विकल्प से शकार को छकार आदेश होता है शकार से अट् प्रत्याहार परे रहते। पद के अंतिम झय् प्रत्याहार (वर्ग के १,२,३,४) के बाद श् को विकल्प से छ् हो जाता है, यदि उस श् के बाद अट् (स्वर ह,य,व,र) हो तो। शकार को छकार आदेश करने के लिये तीन बातें होना जरूरी है–

१. पद का अंतिम वर्ण झय् प्रत्याहार होना चाहिए।

२. शकार के बाद अट् प्रत्याहार का होना जरूरी है।

३. शकार का पूर्व पद पदान्त होना चाहिए।

धर्मविद् शेते यहाँ (६०) सूत्र से दकार के स्थान पर जकार आदेश हुआ पुनः (७१) सूत्र से जकार के स्थान पर चकार आदेश होकर (७३) सूत्र से शकार के स्थान पर छकार आदेश होकर धर्मविच्छेते यह रूप बना। जहाँ सूत्र नहीं लगेगा वहाँ धर्मविच्श्ेते रूप रहेगा।

~~कोई पदान्त झय् से परे शकार को छकार होता है। विकल्प से अम् प्रत्याहार~~

परे हो तो ऐसा भी कहते हैं।

स्वर, अन्तःस्थ, ह, वर्ग का पाँचवाँ अक्षर ये अम् प्रत्याहार कहलाते हैं।

सूत्र में अट् प्रत्याहार कहा है और यहाँ अम् प्रत्याहार कहा है अर्थात् ल और पंचम अक्षर के होने पर इस वार्तिक से शकार को छकार आदेश होगा।

तद्+श्लाघ्यनम् इस अवस्था में (६०) सूत्र से दकार के स्थान पर जकार आदेश होकर पुनः (७१) सूत्र से जकार के स्थान पर चकार आदेश होकर इस परिभाषा से शकार के स्थान पर विकल्प से छकार आदेश हो कर तच्छलाघनम् रूप बनता है। विकल्पाभाव में तच्श्लाघनम् रूप बनेगा।

—

हल् प्रत्याहार परे हो तो मकारान्त पद के स्थान ङ अनुस्वार आदेश होता है।

व्रतम्+रक्षति इस स्थिति में (७४) सूत्र से मकार के स्थान पर अनुस्वार आदेश होकर व्रतं रक्षति रूप बनता है।

—

अपदान्त (जो पद का अंतिम न हो) नकार और मकार के स्थान पर अनुस्वार होता है झल् प्रत्याहार परे हो तो। झल् प्रत्याहार वर्ग के १,२,३,४ और ऊष्म वर्ण।

तितन्+सति इस स्थिति में (७५) सूत्र से नकार के स्थान पर अनुस्वार आदेश होकर तितंसति रूप बनता है। इसी प्रकार रिरम्+सते = रिरंसते रूप बनेगा। झल् प्रत्याहार परे हो ऐसा क्यों कहाँ तो कहते हैं राजन्+य यहाँ अपदान्त नकार तो है परंतु उससे परे य झल प्रत्याहार नहीं है अतः राजन्यः ऐसा हि रूप बनेगा।

—

यय् प्रत्याहार परे हो तो अनुस्वार को पर स्वं आदेश होता है। अनुस्वार के बाद यय् प्रत्याहार (ऊष्माण—श ष स ह को छोड़कर सभी व्य जन) हो तो अनुस्वार को परस्व (अगले वर्ण के वर्ग का पंचम अक्षर) हो जाता है।

शम्+कितः इस स्थिति में (७५) सूत्र से मकार के स्थान पर अनुस्वार आदेश हुआ। पुनः (७६) सूत्र से अनुस्वार के स्थान पर ङ्कार पर स्व होकर शङ्कितः रूप बनता है। इसी प्रकार अम्+चितः = अ चितः रूप बनता है।

—

पद के अंतिम अनुस्वार के बाद यय् हो तो अनुस्वार को परस्व विकल्प से होता है।

शुद्धम्+करोषि इस स्थिति में (७४) सूत्र से मकार के स्थान पर अनुस्वार होकर पुनः (७७) सूत्र से विकल्प कर अनुस्वार के स्थान पर ङ्कार पर स्व आदेश होकर शुद्धङ्करोषि रूप बनेगा। विकल्पाभाव में शुद्धं करोषि यह रूप बनेगा।

—

क्व्यन्त राज धातु परे रहते सम् का मकार निपातनात होता है।

प्रत्ययान्त राज् धातु (अर्थात् राज शब्द) बाद में हो तो सम् के म् ही रहता है, अर्थात् सम्+राज् या राट् में म् को अनुस्वार नहीं होता।

(चक्रवर्ती राजा) सम्+राट् इस स्थिति में सूत्र प्राप्त था परंतु

(७८) सूत्र से मकार को मकार ही रहेगा निपात्यनात।

—

हकार से परे मकार हो तो हकार के पूर्व मकार को विकल्प से अनुस्वार होता है।

हकार से य,व,ल परे हो तो हकार के पूर्व मकार को विकल्प से अनुनासिक सहित यँ, वँ, लँ आदेश होता है। पूर्व में ( ) की टीका में वर्णों के उच्चारण स्थान पर यवलो द्विघा .....। कह कर आये हैं। अर्थात् य,व,ल का उच्चारण स्थान अनुनासिक और अननुनासिक दोनों होते हैं। इसलिये यहाँ पर मकार को अनुनासिक सहित य,व,ल आदेश हुआ है।

कथम्+ह्मलयति इस स्थिति में (७४) सूत्र से मकार के स्थान पर नित्यं अनुस्वार की प्राप्ति थी। परंतु (७६) सूत्र से विकल्प कर मकार के स्थान पर अनुस्वार होता है। अनुस्वार पक्ष में कथं ह्मलयति रूप बनता है जहाँ अनुस्वार रहेगा वहाँ कथम् ह्मलयति रूप बनेगा।

किम्+ह्यः इस स्थिति में (७४) सूत्र से मकार के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति थी। परंतु इस वार्तिक से विकल्प से मकार के स्थान पर यँ अनुनासिक आदेश होने पर कियँ ह्यः रूप बनेगा और विकल्प पक्ष में किं ह्यः यह रूप बनेगा। इसी प्रकार किम्+ह्वलयति = किवँ ह्वलयति। किम्+ह्लादयति = किवँ ह्लादयति। रूपों को जानना चाहिये। विकल्प पक्ष में अनुस्वार रहेगा।

—

हकार से नकार परे हो तो हकार के पूर्व मकार को विकल्प से नकार आदेश होता है।

किम्+हनुते इस स्थिति में (७४) सूत्र से मकार के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति थी। परंतु (८०) सूत्र से मकार के स्थान पर विकल्प से नकार आदेश होकर किन्हनुते यह रूप बनता है। विकल्प पक्ष में अनुस्वार होकर किं हनुते द्वितीय रूप बनेगा। महान्+साधु इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रव त्त होता है।

–

डकारान्त और नकारान्त से सकार के अवयव को धुड् का आगम होता है विकल्प से।

–

जो षण्ठयन्त निर्दिष्ट टकार कि जिसमें इत् संज्ञा होकर खम् है। वह उसके आदि में होता है। हित् (जिसमें से ट् हटा हो) प्रत्यय जिससे कहा जाता है, उसके आदि में होता है अर्थात् आगम होने पर हित् प्रत्यय पहले रखा जाता है। ता–षष्ठी विभक्ति के द्वारा कथित प्रत्यय यानी यह षष्ठी विभक्ति के द्वारा कथित होने से प्रत्यय पूर्व में रखा जाता है।

–

ङकार और णकार को क्रम से कुक् और टुक् का आगम होता है, विकल्प से शर् प्रत्याहार परे रहते हैं। ङ् के बाद यदि शर् (श्,ष्,स) हो तो कुक् का आगम होता है तथा ण् के बाद टुक् का आगम होता है। कुक् और टुक् में से क् और ट् शेष रहते हैं।

प्राङ्+शेते इस स्थिति में (८४) सूत्र से कुक् का आगम हुआ। पुनः पूर्व शंका उठी कि कुक् का आगम ङकार के पहले करें कि बाद में करें तो समाधान रूप में (८३) परिभाषक सूत्र के माध्यम से ङकार के लिए कुक् का आगम कहा है अतः ङकार के बाद कुक् का आगम होकर अनुबन्ध लोप करने पर प्राङ्

क् शेते इस स्थिति में (७३) सूत्र से शकार के स्थान पर विकल्प से छकार आदेश होकर प्राङ्क छेते रूप बना। ध्यान रखना कुक् का आगम और छत्व आदेश विकल्प से होते हैं। जहाँ कुक् और छत्व नहीं होगा वहाँ प्राङ्छेते, प्राङ्कशेते और प्राङशेते के आदि रूपों को जानना।

इस स्थिति में टुक् का आगम होकर सुगणट् षष्ठः रूप सिद्ध होता है। टुक् के अभाव में सुगण् षष्ठः ही रहता है। इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रव त्त होता है।

—

जो पष्ठ चन्त निर्दिष्ट है ऐसे ककार की इत् होकर जहाँ लोप हुआ है। वह उसके अन्त में होता है। कित् (जिसमें से क् हटा हो) जिससे कहा जाता है, उसके आदि में होता है अर्थात् आगम होने पर कित् प्रत्यय अन्त में रखा जाता है। टकार की इत् संज्ञा जहाँ होगी, और ककार की इत् संज्ञा जहाँ होगी। इन दोनों को प्रयोग के माध्यम से दर्शाते हैं।

मधुलिङ्+सीदति इस स्थिति में (८१) सूत्र से मधुलिङ् के डकार से सीदति का सकार है अतः (८१) सूत्र धुट् का आगम होगा। अब प्रश्न उठता है कि धुट् का आगम कहाँ करें सकार के पहले करें या अन्त में करें तब परिभाषा सूत्र (८२) सूत्र के माध्यम से सकार के पहले धुट् का आगम होगा क्योंकि धुट् के आगम में उट् का लोप हो जायेगा। उट् के साथ में टकार भी है अतः सूत्र का कथन है कि ट जहाँ लोप होगा तो वह जिसके लिये कथन किया गया है उसके आदि में होगा। धुट् होकर मधुलिङ् ध् सीदति इस दशा में (७१) सूत्र से ध्कार के स्थान पर तकार और डकार के स्थान पर टकार आदेश होकर मधुलिट्त्सीदति रूप बनेगा। धुट् का आगम विकल्प से होता है, जहाँ धुट् का आगम नहीं होगा वहाँ मधुलिट् सीदति द्वितीय रूप बनेगा। इसी प्रकार महान्+साधुः=महान्त्साधुः और महान्साधुः रूप को जानना। प्राङ्+शेते, सुगण्+षष्ठः इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रव त्त होता है।

—

पदान्तनकार को तुँक् का आगम होता है शकार परे रहते विकल्प से।

भवान्+शेते इस स्थिति में (८५) सूत्र से तुक् का आगम होकर अनुबन्ध का लोप हो जाने पर भवान् त् शेते इस स्थिति में (६०) सूत्र से त्कार को चकार और नकार को अकार होकर भवा च्शेते स्थिति में (७३) सूत्र से विकल्प कर के शकार का छकार आदेश होकर भवा च् छेते इस स्थिति में (७०) सूत्र से विकल्प से चकार का लोप होकर भावा छेते रूप सिद्ध हुआ। जहाँ चकार का लोप नहीं होगा वहाँ भवा च्छेते द्वितीय रूप बनेगा। जहाँ शकार के स्थान पर छकार न किया हो वहाँ भवा च्शेते यह त तीय रूप बनेगा और जहाँ तुक् का आगम ही न हुआ हो वहाँ भवा शेते यह चतुर्थ रूप बनेगा। कुङ्+आस्ते, सुगण्+इह इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रव त्त होता है।

—

प्र से परे जो ङम् प्रत्याहार (ङ् ण न) वह है अन्त में जिसके, ऐसा जो पद उससे परे अच् प्रत्याहार को नित्य ही ङ्मुट् का आगम होता है। इस सूत्र के लिये तीन बातें होना जरूरी हैं।

१. पूर्व में ङ् ण् न् इनमें से कोई एक वर्ण हो।

२. ङ् ण् न् के पूर्व ह्रस्व स्वर हो।

३. ङ् ण् न् से परे कोई स्वर हो।

ङम् प्रत्याहार में ङ् ण् न् ये तीन वर्ण आते हैं। अतः (२१) सूत्र के माध यम से क्रम से ङ् के लिये ङ्, ण् के लिये ण् और न् के लिये न् का आगम होगा।

क्रुङ्+आस्ते इस स्थिति में (८६) सूत्र से क्रुङ् में उकार ह्रस्व है और उकार से परे ङ् ङम् प्रत्याहार है और ङ से परे आस्ते का आ अच् प्रत्याहार है। अतः (८६) सूत्र से ङ् का आगम होकर क्रुङ्ङास्ते यह रूप सिद्ध होता है। इसी प्रकार सुगण्+इह = सुगण्णिह। कुर्वन्+आस्ते = कुर्वन्नास्ते रूप जानना।

—

सुट् से सहित कृ धातु परे रहते सम् के मकार के स्थान पर अनुस्वार सहित एक आदेश होता है।

सम्+कर्ता इस स्थिति में सूत्र से सम् के मकार के स्थान पर सकार आदेश होकर संस्कर्ता रूप सिद्ध होता है।

—

अम् प्रत्याहार है जिससे परे ऐसे खय् प्रत्याहार परे रहते पुम् के मकार के स्थान पर अनुस्वार पूर्वक सकार आदेश होता है।

पुम्+कोकिला इस दशा में (७४) सूत्र से मकार के स्थान पर अनुस्वार की प्राप्ति थी परंतु (८८) सूत्र से पुम् के मकार को अनुस्वार सहित सकार आदेश होकर पुँस्कोकिला रूप निष्पन्न होता है। भवान्+तरति इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रव त्त होता है।

—

जिससे परे अम् प्रत्याहार है ऐसे छव् प्रत्याहार के परे होने पर नकारान्त पदकों अनुस्वार सहित सकार आदेश होता है प्रशान् शब्द को छोड़कर। पद के अंतिम न् को अनुस्वार सहित सकार आदेश होता है, बाद में अम् पर क (जिसके बाद में अम् अर्थात् स्वर, अन्तःस्थ, ह वर्ग के पाँचवें अक्षर हों) छ व् (च,छ,ट,ठ,त,थ) हो तो।

इस सूत्र के लिये तीन बातें होना जरूरी हैं—

१. पदान्त नकार होना जरूरी है। २. पदान्त नकार के बाद छव् प्रत्याहार का होना जरूरी है। ३. छव् प्रत्याहार के बाद अम् प्रत्याहार होना चाहिये।

भवान्+तरति इस स्थिति में (८९) सूत्र से नकार के स्थान पर अनुस्वार सहित सकार आदेश होकर भवाँस्तरति रूप सिद्ध होता है।

इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रव त्त होता है।

–

छव् प्रत्याहार परे हो तो रेफ के स्थान पर सकार आदेश होता है।

कः+छिनत्ति इस स्थिति में ( ) सूत्र से विसर्ग के स्थान पर सकार आदेश होकर (१००) सूत्र से सकार के स्थान पर रकार आदेश होकर (९०) सूत्र में रकार के स्थान पर सकार आदेश होकर (९०) सूत्र से सकार के स्थान पर शकार आदेश होकर कश्छिनत्ति रूप सिद्ध होता है।

–

नृन् शब्द से पकार परे रहते नकार के स्थान पर री आदेश होता है। पर्याय से रूक्व आगम भी होता है विकल्प से नॄँ ँ पाहि – नृन्+पाहि इस स्थिति में (९१) सूत्र से नकार के स्थान री आदेश होकर अनुबन्ध लोप होकर (९२) सूत्र से रकार के स्थान पर ँ उपध्मानीय होकर नॄँ ँ पाहि रूप बना। चकार से विसर्ग भी होता है विसर्ग पक्ष में नॄँः पाहि रूप सिद्ध होता है।

–

कवर्ग पवर्ग परे होने पर रेफ को क्रमशः जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय आदेश होते हैं। चकार से विसर्ग भी होता है। कवर्ग बाद में हो तो विसर्ग को ँ क (जिह्वामूलीय चिह्न) और पवर्ग बाद में हो तो विसर्ग को ँ प (उपध्मानीय चिह्न) हो जाते हैं, पक्ष में विसर्ग भी होता है। अर्थात् क प से पहले आद्ये विसर्ग के तुल्य ँ चिह्न लग जाते हैं। जिह्वामूलीय और उपध्मानीय के अभाव में विसर्ग आदेश भी होता है।

कस्+करोति इस स्थिति में (१०१) सूत्र से सकार के स्थान पर रि आदेश अनुबन्ध लोप होकर कर् करोति (९२) सूत्र से रेफ के स्थान पर ँ उपध्यमनीय आदेश होकर क ँ करोति रूप सिद्ध होता है। सूत्र में

चकार होने से विसर्ग भी होता है। विसर्ग पक्ष में कः करोहि द्वितीय रूप बनता है। इसी प्रकार क ं पचति और कः पचति का प्रयोग जानना। इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रव त्त होता है।

—

—

दो बार जिसका कथन किया गया है उसमें दूसरा म्रि संज्ञक होता है।

—

—

—

कस्कादि गण पठित शब्दों से परे रेफ के स्थान पर सकार आदेश होता है।

कः+कः इस स्थिति में (६३) सूत्र से पर कः कि म्रि संज्ञक होकर (१०१) सूत्र से पूर्व विसर्ग को री आदेश अनुबन्ध लोप होकर कर् कः स्थिति में सूत्र से रेफ के स्थान पर सकार होकर कस्कः रूप सिद्ध होता है। इसी प्रकार कौतः+कुतः = कौतस्कुतः के प्रयोग को जानना।

—

अहन् के नकार को नित्य रेफ आदेश होता है। परंतु सुप् आदि विभक्ति परे हो तो रेफ आदेश नहीं होता है।

अहन्+अहः– इस स्थिति में (६५) सूत्र से नकार के स्थान पर रेफ आदेश होकर अहरहः रूप सिद्ध होता है।

।।अथ विसर्गसन्धिः।।

अब विसर्ग सन्धि का प्रकरण प्रारम्भ होता है। पुरूषः+त्सरूकः इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रव त्त होता है।

–

शर् प्रत्याहार परक खर् प्रत्याहार परे रहते रेफान्त को विसर्ग आदेश होता है। इस सूत्र के लिये तीन बातें होना जरूरी है।

१. पूर्व में रेफ ही होना चाहिए।

२. रेफ के बाद खर् प्रत्याहार होना चाहिए।

३. खर् प्रत्याहार के बाद शर् प्रत्याहार (ख,फ,छ,ठ,च,ट,क,प,श,ष,स) होना चाहिए।

पुरुषः+त्सरुकः– यहाँ पुरुषः के विसर्ग को रेफ आदेश होता है। अतः रेफ पूर्व में है। त्सरुकः में त् खर् प्रत्याहार के अन्तर्गत है तथा उससे परे शर् प्रत्याहार है अतः रेफ के लिये विसर्ग आदेश हो जायेगा।

पुरुषस्+त्सरुकः इस स्थिति में (१०१) सूत्र से सकार के स्थान पर रि आदेश अनुबन्ध लोप होकर (६६) सूत्र से त्सरुकः में स शर् प्रत्याहार है और त् खर् प्रत्याहार है। अतः (६६) से रेफ के स्थान पर विसर्ग होकर पुरुषः त्सरुकः रूप सिद्धम् होता है। सूत्र सूत्र का अपवाद है। छवि ५।४।२५ इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रव त्त होता है।

शर् प्रत्याहार परे रहते रेफ के स्थान पर सकार आदेश होता है और विसर्ग भी होता है।

कस्+शेते इस स्थिति में (१०१) सूत्र से सकार के स्थान पर रेफ आदेश होकर (६७) सूत्र से रेफ के स्थान पर सकार या विसर्ग आदेश हुआ सकार पक्ष में (६०) सूत्र से सकार के स्थान पर शकार आदेश होकर कश्शेते रूप सिद्ध होता है। विसर्ग पक्ष में कः शेते द्वितीय रूप सिद्ध होता है।

इण् प्रत्याहार से परे सकार के स्थान पर षकार आदेश होता है अंगर सकार से कवर्ग और पवर्ग सम्बन्धि प्रत्यय परे हो तो।

सर्पिस्+कल्पम् इस स्थिति में (६८) सूत्र से सकार हुआ

प्रत्याहार के वाद है और कल्पम् यह प्रत्यय रूप में कवर्ग है। अतः (६८) सूत्र से सकार के स्थान पर षकार आदेश होकर सर्पिष्कल्पम् यह रूप सिद्ध होता है।

—

इकार, उकार और ऊङ् से रेफ के स्थान पर षकार आदेश होता है कवर्ग और पवर्ग परे हो तो। परंतु प्रत्यय, पुंस और मुहस् शब्द को छोड़कर आदेश होता है।

निर्+कृतम् इस स्थिति में (६६) सूत्र से रेफ के स्थान पर षकार आदेश होकर निष्कृतम् रूप सिद्ध होता है। इसी प्रकार दुष्कृतम् को भी जानना।

—

शिरस् और अधस् के रेफ के स्थान पर सकार आदेश होता है पद शब्द परे हो तो।

अधस्+पदम् इस स्थिति में (१०२) सूत्र से सकार के स्थान पर रि आदेश अनुबन्ध लोप होकर (१००) सूत्र से रेफ के स्थान पर सकार आदेश होकर अधस्पदम रूप सिद्ध होता है। इसी प्रकार शिरस्पदम् का प्रयोग होकर अधस्पदम रूप सिद्ध होता है। इसी प्रकार शिरंस्पदम् का प्रयोग को जानना।

—

तिरस् शब्द के रेफ के स्थान पर विकल्प से सि आदेश होता है।

तिरस्+कृत्य इस स्थिति में (१०२) सूत्र से सकार के स्थान पर रि आदेश हुआ अनुबन्ध का लो होकर तिरर् कृत्य स्थिति में (१०१) सूत्र से विकल्प से रेफ के स्थान सकार आदेश होकर तिरस्कृत यहँ रूप सिद्ध होता है। विकल्प पक्ष में ( ) सूत्र से रेफ के स्थान पर विसर्ग आदेश होकर तिरः

कृत्य यह द्वितीय रूप बनता है।

।।अथ स्वादिसन्धि।।

११६. विधिसूत्रम् –

पदान्त सकार को और सजुष् के सकार रि आदेश होता है। रिह कि इ अनुबन्ध ा लोप है। यह सूत्र (६५) सूत्र का अपवाद है। जिनः+अर्च्यः, जिन+वन्द्यः इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रव त्त होता है।

–

अकार से परे रि के स्थान पर उकार आदेश होता है। अकार और हश् प्रत्याहार परे रहते हैं। ह्रस्व अ के बाद रि को उ हो जाता है, बाद में ह्रस्व अ हो अथवा हश् प्रत्याहार ह्, अन्तःस्थ, वर्ग के ३,४,५ वर्ण हो तो।

जिनस्+अर्च्यः इस स्थिति में (१०२) सूत्र से सकार के स्थान पर रि आदेश होकर (१०३) सूत्र से रि के स्थान पर उकार आदेश होकर (२४) सूत्र से ओ एप् एफ आदेश होकर (३६) सूत्र से अकार को पूर्व रूप होकर जिनो र्च्यः रूप सिद्ध होता है। इसी प्रकार जिनो वन्द्यः का प्रयोग जानना चाहिए। इतना ध्यान रखना कि जिनो वन्द्यः प्रयोग में सूत्र नहीं लगेगा।

–

पूर्वओकर और अवर्ण से परे रि के स्थान पर यकार आदेश होता है रि से परे अश् प्रत्याहार हो तो। सूत्र में रि से पूर्व 'अ' तथा पर अकार होने से उकार आदेश होता है। परंतु इस सूत्र में रि से पूर्व अवर्ण और पर अश प्रत्याहार कहा है। यद्यपि अवर्ण में अ और अश् प्रत्याहार में भी अ आता है। तब 'रि' को उकार आदेश होगा। या 'य' आदेश होगा। ऐसी शंका किये जाने पर 'रि' से पूर्व 'अ' और पर अ होगा तो 'रि' को उकार आदेश ही होगा और यदि पूर्व में आ और रि में अ को छोड़कर कोई भी स्वर होगा तो रि को य् आदेश ही होगा ऐसा जानना चाहिये।

देवास्+इह इस स्थिति में (१०२) सूत्र से सकार के स्थान पर रि आदेश होकर (१०४) सूत्र से रि के स्थान पर यकार आदेश होकर देवा य् इह इस स्थिति में (२६) सूत्र से विकल्प से यकार का लोप होकर देवा इह यह प्रयोग सिद्ध होता है। यकार लोपाभाव में देवायिह यह द्वितीय प्रयोग को जानना। अश् प्रत्याहार हो ऐसा क्यों कहा।

यहाँ अवर्ण से परे रेफ तो है परंतु सकार अश् प्रत्याहार न होने के कारण ( ) सूत्र से रेफ के स्थान पर विसर्ग होकर देवाः सन्ति रूप सिद्ध होता है। देवास्–यान्ति इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रव त्त होता है।

–

वकार और यकार को नित्य हि खम् होता है अश् और हल् प्रत्याहार परे रहते।

स्वर, ह्, अन्तःस्थ, वर्ग के ३,४,५ अक्षर अश् प्रत्याहार कहलाते हैं। हल् प्रत्याहार–सम्पूर्ण व्य जन हल प्रत्याहार कहलाते हैं।

अश् और हल् प्रत्याहार में कुछ वर्ण मिलते भी हैं। अतः हकार के पहले के शब्द हो तो य और व का लोप विकल्प से होगा और हकार के बाद के शब्द हो तो य् व् का लोप नित्य ही होगा।

देवास्+यान्ति इस स्थिति में (१०२) सूत्र से सकार के स्थान पर रि आदेश होकर (१०३) सूत्र से रि के स्थान पर यकार आदेश होकर (१०५) सूत्र से यकार का नित्य लोप होकर देवा यानि रूप सिद्ध होता है।

कविर्+रमते, पहुर्+राजा, पुनर्+रात्र इस स्थिति में अग्रिम सूत्र प्रव त्त होता है।

—

रेफ का लोप होता है रेफ परे रहते हैं।

—

—

ढकार और रेफ का लोप किये जाने लोप के पूर्व अण् प्रत्याहार को दी आदेश होता है। ढ् या र् का लोप हुआ हो तो उससे पूर्ववर्ती अण् (अ,इ,उ) को दीर्घ हो जाता है।

इस स्थिति में (१०६) सूत्र से पुनर् के रेफ को खम् होकर (१०६) सूत्र से पुन के अकार को पुना दी आदेश होकर पुना रात्रः यह प्रयोग सिद्ध होता है। इसी प्रकार कंविस्+रमते और पटुस्+राजा के सकार को रि होकर, रेफ का लोप कर दी आदेश होकर कवी रमते और पटू राजा के प्रयोग को जानना। सुक्त प्रकिया कि कुछ शंका रखी है उसको स्पष्ट करते हैं। वीर भ्यस् इत्यत्र इत्यनेन एत्त्वं, सुपि इत्यनेन दीत्त्वं च प्राप्तम्। प्राप्ते सति (१०८) १।२।६६ द्वयोः प्रसङ्गयोरन्यार्थयोरेकस्मिन् युगपदुपनिपाते स्पर्द्धः संघर्षः। स्पर्द्धे सति परं कार्यं भवति। इत्येत्त्वम् वीरेभ्यः।

प्रश्न उठा कि वीर+भ्यस इस दशा में ( ) सूत्र से वीर के अकार के स्थान एकार की प्राप्ति है। और ( ) सूत्र से अकार को दी दीर्घ की प्राप्ति है। दो कार्य एक साथ जब प्राप्त है तो उसे स्पर्द्ध या संघर्ष कहते हैं। किस कार्य को करें एत्व करें या दी करे इस प्रश्न का समाधान परिभाषा सूत्र (१०८) सूत्र

के माध्यम से सूत्र और सूत्रों के क्रम से नम्बर देखें तो सूत्र का नम्बर है। ५।२।६३ यानी ५ वाँ अध्याय दूसरा पाद का ६३ नम्बर का सूत्र है और

सूत्र का ५।२।६८ अर्थात् पाँच नम्बर ज्यादा है अर्थात् सुपि के बाद का सूत्र है जिसे परम कहते हैं। पर कार्य होने पर एत्व होकर वीरेभ्यः यह प्रयोग सिद्ध होता है।

—

संघर्ष में पर कार्य होता है। दो के प्रसंग में एक साथ एक में अन्यार्थ कि उत्त्पति हो उसे स्पर्द्धः या संघर्ष कहते हैं।

—

ककार से रहित एतद् और तद् शब्द के सु का हल् परे रहने पर लोप होता है, परंतु न समास हो तो लोप नहीं होता है।

एषस्+ददाति— इस स्थिति में

(१०६) सूत्र से सकार का लोप होकर एष ददाति रूप सिद्ध होता है। इसी प्रकार सस्+तरति= स तरति का प्रयोग जानना। न एषः इति अनेषः= अनेषस्+हसति इस स्थिति में सूत्र से सकार के स्थान पर रि आदेश होकर (१०३) सूत्र से रि के स्थान पर उत्व होकर ( ) सूत्र से एप् आदेश होकर अनेषो हसति रूप सिद्ध होता है।

न+एषस+ददाति इस न+एषस् इस स्थिति में "२६" सूत्र से ऐप् आदेश होकर नैषस् इस स्थिति में (१०६) सूत्र से सकार का लोप होकर नैष ददाति रूप सिद्ध होता है। एषस्+अत्र इस स्थिति में (१०२) सूत्र से सकार को रि आदेश होकर (१०३) सूत्र से रि के स्थान पर उकार होकर (२४) सूत्र से एप् आदेश होकर एषो अत्र

(३६) सूत्र से अकार को पूर्व रूप होकर एषो त्र प्रयोग सिद्ध होता है।

अथ संज्ञाप्रकरणम्

अइउण् (१) ऋऌक् (२) एओङ् (३) ऐऔच् (४) हयवरट् (५) लण् (६) ञमङणनम् (७) झभञ् (८) घढधष् (९) जबगडदश् (१०) खफछठथचटतव् (११) कपय् (१२) शषसर् (१३) हल्(१४) । इति प्रत्याहार सूत्राणि। एषामन्त्या इतः। हकारादिष्वकार उच्चारणार्थः। लण् सूत्रे कार इत्संज्ञकः।

(१) संज्ञासूत्रम् –

–

–

–

[३] इत्येवं काल इव कालो सो च् यथासंख्यं प्रदीप इत्येवं संज्ञो भवति। स प्रत्येकमुदात्तानुदात्तस्वरितभेदेन त्रिधा।

५. संज्ञासूत्रम् –

–

–

—

वार्तिकम् "ऋकालृकारयोः स्व संज्ञा वक्तव्याः"।।

–

–

–

–

अथाच् संधिप्रकरणम्

१३. विधिसूत्रम् –

–

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

–

–

–

–

अथ प्रकृतिभावसन्धिः

५६. विधिसूत्रम् –

[३]।

५७. सञ्ज्ञासूत्रम् –

–

–

—

—

—

३

वदत्त, देवदे३त्र। देवदत्ते३। अन त इति किम्? कृष्णमित्रे३। रोरिति किम्? देवदत्तस्य वकारात्परत्र मा भूत्। एकैकग्रहणं पर्यायार्थम्।

६३. संज्ञासूत्रम् –

—

—

—

—

—

अथ हल्सन्धिः

६६. विधिसूत्रम् –

–

–

–

–

–

–

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

—

।।अथ विसर्गसन्धिः।।

१०८. विधिसूत्रम् —

।।अथ स्वादिसन्धि।।

११६. विधिसूत्रम् –

—

—

(३.४२६देखना है)

कातन्त्र–रूपमाला (पञ्च–सन्धि) के सूत्र पाठ

(१.१) कथनसूत्रम् – सिद्धो वर्णसमाम्नायः।।१।।

(१.२) सञ्ज्ञासूत्रम् – तत्र चतुर्दशादौ स्वराः।।२।।

(१.३) सञ्ज्ञासूत्रम् – दश समानाः।।३।।

(१.४) सञ्ज्ञासूत्रम् – तेषां द्वौ द्वावन्यो न्यस्य सवर्णौ।।४।।

(००) सञ्ज्ञासूत्रम् – ऋकारलृकारौ च।।५।।

(१.५)सञ्ज्ञासूत्रम् – पूर्वो ह्रस्वः।।६।।

(१.६)सञ्ज्ञासूत्रम – परो दीर्घः।।७।।

(१.७)सञ्ज्ञासूत्रम् – स्वरो वर्णवर्जो नामि।।८।।

(१.८)सञ्ज्ञासूत्रम् – एकारादीनि सन्ध्यक्षराणि।।९।।

(००) नियमसूत्रम् – नित्यं सन्ध्यक्षराणि दीर्घाणि।।१०।।

(१.९)सञ्ज्ञासूत्रम् – कादीनि व्यञ्जनानि।।११।।

(१.१०)सञ्ज्ञासूत्रम् – ते वर्गाः पञ्च पञ्च पञ्च।।१२।।

(१.११)सञ्ज्ञासूत्रम् – वर्गाणां प्रथमद्वितीयाः शषसाश्चाघोषाः।।१३।।

(१.१२) सञ्ज्ञासूत्रम् – घोषवन्तो न्ये।।१४।।

(१.१३) सञ्ज्ञासूत्रम् – अनुनासिका ङञणनमाः।।१५।।

(१.१४) सञ्ज्ञासूत्रम् – अन्तःस्था यरलवाः।।१६।।

(१.१५) सञ्ज्ञासूत्रम् – ऊष्माणः शषसहाः।।१७।।

(१.१६) सञ्ज्ञासूत्रम् – अः इति विसर्जनीयः।।१८।।

(१.१७)सञ्ज्ञासूत्रम् – कx इति जिह्वामूलीयः।।१९।।

(१.१८) सञ्ज्ञासूत्रम् – प इत्युपध्मानीयः।।२०।।

(१.१९)सञ्ज्ञासूत्रम् – अं इत्यनुस्वारः।।२१।।

(१.२३)अतिदेशसूत्रम् – लोकोपचाराद् ग्रहणसिद्धिः।।२२।।

(१.२२)विधिसूत्रम् – अनतिक्रमयन्विश्लेषयेत्।।२३।।

(१.२४)विधिसूत्रम् – समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्।।२४।।

(१.२१)नियमसूत्रम् – व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्।।२५।।

(००) विधिसूत्रम् – ऋति ऋतोर्लोपो वा।।२६।।

(१.२५)विधिसूत्रम् – अवर्ण इवर्णे ए।।२७।।

(००) नियमसूत्रम् – हललाङ्गलयोरीषायामस्य लोपः।।२८।।

(००) नियमसूत्रम् – मनसः सस्य च।।२९।।

(१.२६)विधिसूत्रम् – उवर्णे ओ।।३०।।

(१.२७)विधिसूत्रम् – ऋवर्णे अर्।।३१।।

(००) विधिसूत्रम् – रेफाक्रान्तस्य द्वित्वमशिटो वा।।३२।।

(३.४३६)सञ्ज्ञासूत्रम् – शिडिति शादयः।।३३।।

(००) विधिसूत्रम् – "ऋणप्रवसनवत्सतरकम्बलदशानामृणे रो दीर्घः।।३४।।

(००) विधिसूत्रम् – ऋते च तृतीयासमासे।।३५।।

(१.२८)विधिसूत्रम् – ऌवर्णे अल्।।३६।।

(१.२९)विधिसूत्रम् – एकारे ऐ ऐकारे च।।३७।।

(००) विधिसूत्रम् – स्वस्येरेरिणीरिषु।।३८।।

(००) विधिसूत्रम् – एवे चानियोगे नित्यम्।।३९।।

(१.३०)विधिसूत्रम् – ओकारे औ औकारे च।।४०।।

(००) नियमसूत्रम् – ओमि च।।४१।।

(००) नियमसूत्रम् – ओष्ठौत्वोः समासे वा।।४२।।

(००) नियमसूत्रम् – अक्षस्य ऊहिन्याम्।।४३।।

(१.३१) विधिसूत्रम् – इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः।।४४।।

(१.३२)विधि सूत्रम् – वमुवर्णः।।४५।।

(१.३३)विधिसूत्रम् – रमृवर्णः।।४६।।

(१.३४) विधिसूत्रम् – लम्ऌवर्णः।।४७।।

(१.३५)विधिसूत्रम् – ए अय्।।४८।।

(१.३६)विधिसूत्रम् – ऐ आय्।।४९।।

(१.३७) विधिसूत्रम् – ओ अव् ।।५०।।

(१.३८)विधिसूत्रम् – औ आव् ।।५१।।

(००) विधिसूत्रम् – गोर इति वा प्रकृतिः ।।५२।।

(००) नियमसूत्रम् – अवः स्वरे ।।५३।।

(००) नियमसूत्रम् – अक्षेन्द्रयोर्नित्यम् ।।५४।।

(१.३६)नियमसूत्रम् – अयादीनां यवलोपः पदान्ते न वा लोपे तु प्रकृतिः ।।५५।।

(००) विधिसूत्रम् – स्वरजौ यवकारावनादिस्थौ लोप्यौ व्यञ्जने ।।५६।।

(१.४०) विधिसूत्रम् – एदोत्परः पदान्ते लोपमकारः ।।५७।।

(१.४१) विधिसूत्रम् – न व्यञ्जने स्वराः सन्धेयाः ।।५८।।

(००) विधिसूत्रम् – र ऋतस्तद्धिते ये ।।५९।।

(००) विधिसूत्रम् – गव्यूतिरध्वमाने ।।६०।।

(१.४२) विधिसूत्रम् – ओदन्ता अइउआ निपाताः स्वरे प्रकृत्या ।।६१।।

(१.४३) विधिसूत्रम् – द्विवचनमनौ ।।६२।।

(००) विधिसूत्रम् – मणीवादीनां वा ।।६३।।

(००) निषेधसूत्रम् – न साको दसः ।।६४।।

(१.४४) विधिसूत्रम् – बहुवचनममी ।।६५।।

(१.४५) विधिसूत्रम् – अनुपदिष्टाश्च ।।६६।।

(००) निषेधसूत्रम् – नेतौ ।।६७।।

(१.४६)विधिसूत्रम् – वर्गप्रथमाः पदान्ताः स्वरघोषवत्सु तृतीयान् ।।६८।।

(१.४७)विधिसूत्रम् – पञ्चमे पञ्चमांस्तृतीयान्न वा ।।६९।।

(००) नियमसूत्रम् – प्रत्यये पञ्चमे पञ्चमान्नित्यम् ।।७०।।

(१.४८) विधिसूत्रम् – वर्गप्रथमेभ्यः शकारः स्वरयवरपरश्छकारं न वा ।।७१।।

(००) विधिसूत्रम – लानुनासिकेष्वपीच्छन्त्यन्ये ।।७२।।

(१.४९) विधिसूत्रम् – तेभ्य एव हकारः पूर्वचतुर्थं न वा ।।७३।।

(१.५०) विधिसूत्रम् – पररूपं तकारो लचटवर्गेषु ।।७४।।

(२.१३) सञ्ज्ञासूत्रम् – धुड् व्यञ्जनमनन्तस्थानुनासिकम्।।७५।।

(३.४०५) विधिसूत्रम् – पदान्ते धुटां प्रथमः।।७६।।

(३.४१२) विधिसूत्रम् – धुटां तृतीयश्चतुर्थेषु।।७७।।

(१.५१) विधिसूत्रम् – चं शे।।७८।।

(२.११) सञ्ज्ञासूत्रम् – अन्त्यात्पूर्व उपधा।।७९।।

(१.५२) विधिसूत्रम् – ङणना ह्रस्वोपधाः स्वरे द्विः।।८०।।

(१.५३) विधिसूत्रम् – नो न्तश्चछयोः शकारमनुस्वारपूर्वम्।।८१।।

(१.५४) विधिसूत्रम् – टठयोः षकारम्।।८२।।

(१.५५) विधिसूत्रम् – तथयोः सकारम्।।८३।।

विधिसूत्रम् – नृनः पे वा।।८४।।

निषेधसूत्रम् – प्रशानः शादीन्।।८५।।

(१.५६) विधिसूत्रम् – ले लम्।।८६।।

(००) निषेधसूत्रम् – अनुस्वारहीनम्।।८७।।

(१.५७) विधिसूत्रम् – जझञशकारेषु ञकारम्।।८८।।

(१.५८) विधिसूत्रम् – शि न्चौ वा।।८९।।

(१.५९) विधिसूत्रम् – डढणेषु णम्।।९०।।

(१.९०) विधिसूत्रम् – मो नुस्वारं व्यञ्जने।।९१।।

(००) विधिसूत्रम् – विरामे वा।।९२।।

(१.९१) विधिसूत्रम् – वर्गे तद्वर्गपञ्चमं वा।।९३।।

(००) विधिसूत्रम् – यवलेषु वा।।९४।।

(१.९२) विधिसूत्रम् – विसर्जनीयश्चे छे वा शम्।।९५।।

(१.९३) विधिसूत्रम् – टे ठे वा षम्।।९६।।

(१.९४) विधिसूत्रम् – ते थे वा सम्।।९७।।

(१.९५) विधिसूत्रम् – कखयोर्जिह्वामूलीयं न वा।।९८।।

(००) नियमसूत्रम् – जिह्वामूलीयोपध्मानीयौ च।।९९।।

(१.६६) विधिसूत्रम् – पफयोरुपध्मानीयं न वा।।१००।।

(००) निषेधसूत्रम् – न शादीन् शषसस्थे।।१०१।।

(००) विधिसूत्रम् – अघोषस्थेषु शषसेषु वा लोपम्।।१०२।।

(१.६७) विधिसूत्रम् – शे षे से वा वा पररूपम्।।१०३।।

(१.६८) विधिसूत्रम् – उमकारयोर्मध्ये।।१०४।।

(१.६९) विधिसूत्रम् – अघोषवतोश्च।।१०५।।

(१.७०) विधिसूत्रम् – अपरो लोप्यो न्यस्वरे यं वा।।१०६।।

(१.७७) निषेधसूत्रम् – न विसर्जनीयलोपे पुनः सन्धिः।।१०७।।

(१.७१) विधिसूत्रम् – आभोभ्यामेवमेव स्वरे।।१०८।।

(००) विधिसूत्रम् – भगोअघोभ्यां वा।।१०९।।

(१.७२) विधिसूत्रम् – घोषवति लोपम्।।११०।।

(१.७३) विधिसूत्रम् – नामिपरो रम्।।१११।।

(२.१६४) विधिसूत्रम् – इरुरोरीरूरौ।।११२।।

(१.७४) विधिसूत्रम् – घोषवत्स्वरेषु।।११३।।

(१.७५) विधिसूत्रम् – रप्रकृतिरनामिपरो पि।।११४।।

(००) विधिसूत्रम् – अह्नो रेफे।।११५।।

(००) निषेधसूत्रम् – न स्यादिभे।।११६।।

(००) विधिसूत्रम् – अहरादीनां पत्यादिषु।।११७।।

(००) विधिसूत्रम् – एषसपरो व्यञ्जने लोप्यः।।११८।।

(१.७८) विधिसूत्रम् – रो रे लोपं स्वरश्च पूर्वो दीर्घः।।११९।।

(१.७९) विधिसूत्रम् – द्विर्भावं स्वरपरश्छकारः।।१२०।।

(२.२०३) विधिसूत्रम् – अघोषे प्रथमः।।१२१।।

(००) विधिसूत्रम् – दीर्घात्पदान्ताद्वा।।१२२।।

(००) विधिसूत्रम् – आङ्माङ्भ्यां नित्यम्।।१२३।।

(००) विधिसूत्रम् – अस्वरे।।१२४।।

❑ ❑ ❑

अकारादि

अक्षस्य ऊहिन्याम्।।४३।।
अक्षेन्द्रयोर्नित्यम्।।५४।।
अघोषवतोश्च।।१०५।।
अघोषे प्रथमः।।१२१।।
अघोषस्थेषु शषसेषु वा लोपम्।।१०२।।
अनतिक्रमयन्विश्लेषयेत्।।२३।।
अनुनासिका ङञणनमाः।।१५।।
अनुपदिष्टाश्च।।६६।।
अनुस्वारहीनम्।।८७।।
अन्तःस्था यरलवाः।।१६।।
अन्त्यात्पूर्व उपधा।।७६।।
अपरो लोप्यो न्यस्वरे यं वा।।१०६।।
अं इत्यनुस्वारः ।।२१।।
अवर्ण इवर्णे ए।।२७।।
अवः स्वरे।।५३।।
अयादीनां यवलोपः पदान्ते न वा लोपे तु प्रकृतिः।।५५।।
अः इति विसर्जनीयः।।१८।।
अस्वरे।।१२४।।
अहरादीनां पत्यादिषु।।११७।।
अह्नो रेफे।।११५।।

आकारादि

आङ्माङ्भ्यां नित्यम्।।१२३।।
आभोभ्यामेवमेव स्वरे।।१०८।।

इकारादि

इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः।।४४।।
इरुरोरीरूरौ।।११२।।

उकारादि

उमकारयोर्मध्ये।।१०४।।
उवर्णे ओ।।३०।।

ऊकारादि

ऊष्माणः शषसहाः।।१७।।

ऋकारादि

ऋकारलृकारौ च।।५।।
ऋणप्रवसनवत्सतरकम्बलदशानामृणे रो दीर्घः।।३४।।
ऋति ऋतोर्लोपो वा।।२६।।
ऋते च तृतीयासमासे।।३५।।
ऋवर्णे अर्।।३१।।

ऌकारादि

ऌवर्णे अल्।।३६।।

एकारादि

ए अय्।।४८।।
एकारादीनि सन्ध्यक्षराणि।।६।।
एकारे ऐ ऐकारे च।।३७।।
एदोत्परः पदान्ते लोपमकारः।।५७।।
एवे चानियोगे नित्यम्।।३६।।
एषसपरो व्यञ्जने लोप्यः।।११८।।

ऐकारादि

ऐ आय् ।।४६।।

ओकारादि

ओदन्ता अइउआ निपाताः स्वरे प्रकृत्या

।।६१।।
ओकारे औ औकारे च।।४०।।
ओ अव्।।५०।।
ओमि च ।।४१।।
ओष्ठौत्वोः समासे वा।।४२।।
ओसि च।।१४६।।

औकारादि

औ आव्।।५१।।

ककारादि

कx इति जिह्वामूलीयः।।१६।।
कखयोर्जिह्वामूलीयं न वा।।६८।।
कादीनि व्यञ्जनानि।।११।।

गकारादि

गव्यूतिरध्वमाने।।६०।।
गोर इति वा प्रकृतिः।।५२।।

घकारादि

घोषवति लोपम्।।११०।।
घोषवन्तो न्ये।।१४।।
घोषवत्स्वरेषु।।११३।।

ङकारादि

ङणना ह्रस्वोपधाः स्वरे द्विः।।८०।।

चकारादि

चं शे।।७८।।

जकारादि

जझञशकारेषु ञकारम।।८८।।

टकारादि

टठयोः षकारम्।।८२।।

डकारादि

डढणेषु णम्।।६०।।

तकारादि

तत्र चतुर्दशादौ स्वराः।।२।।
तथयोः सकारम्।।८३।।
ते थे वा सम्।।६७।।
ते वर्गाः पञ्च पञ्च पञ्च।।१२।।
तेभ्य एव हकारः पूर्वचतुर्थं न वा।।७३।।
तेषां द्वौ द्वावन्यो न्यस्य सवर्णौ।।४।।

दकारादि

दश समानाः।।३।।
दीर्घात्पदान्ताद्वा।।१२२।।
द्विर्भावं स्वरपरश्छकारः।।१२०।।
द्विवचनमनौ।।६२।।

धकारादि

धुटां तृतीयश्चतुर्थेषु।।७७।।
धुड् व्यञ्जनमनन्तस्थानुनासिकम्।।७५।।

नकारादि

न विसर्जनीयलोपे पुनः सन्धिः।।१०७।।
न व्यञ्जने स्वराः सन्धेयाः।।५८।।
न साको दसः।।६४।।
न शादीन् शषसस्थे।।१०१।।
न स्यादिभे।।११६।।
नामिपरो रम्।।१११।।
नित्यं सन्ध्यक्षराणि दीर्घाणि।।१०।।
नृनः पे वा।।८४।।
नेतौ।।६७।।
नो न्तश्चछयोः शकारमनुस्वारपूर्वम्।।८१।।

पकारादि

प इत्युपध्मानीयः।।२०।।
पञ्चमे पञ्चमांस्तृतीयान्न वा।।६६।।
पदान्ते धुटां प्रथमः।।७६।।
पफयोरुपध्मानीयं न वा।।१००।।
पररूपं तकारो लचटवर्गेषु।।७४।।
परो दीर्घः।।७।।
पूर्वो ह्रस्वः।।६।।
प्रत्यये पञ्चमे पञ्चमान् नित्यम्।।७०।।
प्रशानः शादीन् ।।८५।।

बकारादि

बहुवचनममी।।६५।।

भकारादि

भगोअघोभ्यां वा।।१०६।।

मकारादि

मणीवादीनां वा।।६३।।
मनसः सस्य च।।२६।।
मो नुस्वारं व्यञ्जने।।६१।।

यकारादि

यवलेषु वा।।६४।।

वकारादि

वमुवर्णः।।४५।।
वर्गप्रथमाः पदान्ताः स्वरघोषवत्सु तृतीयान्।।६८।।
वर्गप्रथमेभ्यः शकारः स्वरयवरपरश् छकारं न वा।।७१।।
वर्गाणां प्रथमद्वितीयाः शषसाश्चाघोषाः।।१३।।
वर्गे तद्वर्गपञ्चमं वा।।६३।।
विरामे वा।।६२।।
विसर्जनीयश्चे छे वा शम्।।६५।।
व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्।।२५।।

रकारादि

र ऋतस्तद्धिते ये।।५६।।
रप्रकृतिरनामिपरो पि।।११४।।
रमृवर्णः।।४६।।
रेफाक्रान्तस्य द्वित्वमशिटो वा।।३२।।
रो रे लोपं स्वरश्च पूर्वो दीर्घः।।११६।।

लकारादि

लम्लृवर्णः।।४७।।
लानुनासिकेष्वपीच्छन्त्यन्ये।।७२।।
ले लम्।।८६।।
लोकोपचाराद् ग्रहणसिद्धिः।।२२।।

शकारादि

शिडिति शादयः।।३३।।
शि न्चौ वा।।८६।।
शे षे से वा वा पररूपम्।।१०३।।

सकारादि

समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम्।।२४।।
स्वरो वर्णवर्जो नामि।।८।।
स्वरजौ यवकारावनादिस्थौ लोप्यौ व्यञ्जने।।५६।।
स्वस्येरेरिणीरिषु।।३८।।
सिद्धो वर्णसमाम्नायः।।१।।

हकारादि

हललाङ्गलयोरीषायामस्य लोपः।।२८।।

दिगम्बर–आचार्यश्री पूज्यपादस्वामीविरचित–जैनेन्द्र–व्याकरणस्य
आचार्यश्रीअभयनन्दिकृता टीका

जैनेन्द्र–महावृत्ति

(पञ्च–सन्धि)

–

–

–

–

[३] इत्येवं काल इव कालो सो च् यथासंख्यं प्रदीप इत्येवं संज्ञो भवति। स प्रत्येकमुदात्तानुदात्तस्वरितभेदेन त्रिधा।

५. संज्ञासूत्रम् –

–

–